॥ श्रीसर्वेश्वरो विजयतेतमाम् ॥

॥ श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः ॥

श्री ६ निम्बार्कमहामुनीन्द्रविरचित

सविशेषनिर्विशेषश्रीकृष्णस्तवराजकी

हिन्दी व्याख्या

वेदान्ततत्त्वसुधा

वही

श्री ६ भगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रपादपद्मसमाश्रित

बाबू श्रीबलदेवसहायजी की

सम्पूर्ण सहायता से

लेखक—पं० श्रीकिशोरदास द्वारा—

मुद्रापित और प्रकाशित ।

काशीस्थ-विद्याविलास प्रेस, नाज़िर बन्त्रालये मुद्रिता ।

२ य संस्करण १०००] सम्वत १९८६ विक्रम [बिना मूल्य

सन् १९२८ ई.

श्री सर्वेश्वरः शरणम्।

मेरा निवेदन

समस्त महानुभावों की सेवा में सविनय निवेदन है, कि यों तो मैं बहुत दिनों से बीमार रहता हूं, तथापि यथाशक्ति जो कुछ बन पड़ता था, स्वसम्प्रदाय की सेवा करता रहता था। किन्तु इधर कुछ दिनों से स्वास्थ्य बहुत ही खराब हो गया है। यकृत (लीवर) बहुत छोटा हो जाने से पाचन शक्ति एकदम मन्द हो गई है—बवासीर भी ज्यादे तंग कर रही है। अच्छे २ वैद्य डाक्टरों का इलाज कराते २ थक कर निराश हो गया हूं। मैं इसको भी परम कृपालु परमेश्वर श्री कृष्ण सर्वेश्वर की परम कृपा समझता हूं—कि इस प्रकार धीरे २ बड़े भारी प्रारब्ध कर्म को थोड़े में भोग कराते हुए सुभीते के साथ उससे निवृत्ति करा रहे हैं। मैं अपनी अल्प बुद्धि से यह समझता हूं, कि अब मेरे जीवन का काम समाप्त हो चुका। इस लिए मेरे परिचित समस्त सज्जनों से यह निवेदन कर देना बहुत जरूरी समझता हूं—कि कोई महाशय मेरे को पत्रादि लिखने तथा सम्प्रदाय-वा और किसी विषय की पूछताछ करने का कष्ट कृपाकर सामने अथवा पत्रादि द्वारा न उठावें। अब मेरे में लिखने-पढ़ने तथा बोलने की शक्ति नहीं, और उन बातों से मेरे को कष्ट होता है। इससे मैंने लिखना-पढ़ना निर्वाह से अधिक बोलना पत्रोत्तर देना बन्द कर दिया है। सिर्फ जीवन निर्वाहार्थ कुछ पत्रादि लाचारी से लिखना पड़ता है। और मेरी स्थिति भी कुछ दिनों से एक जगह पर नहीं है। अतः जिन महाशयों को पत्रादिका अथवा सामने कुछ पूछने पर उत्तर न मिले वे कृपया मेरी दयनीय दशा पर क्षमा करते हुए दुबारा पूछने की कोशिश न करें। मौका पड़ने पर मैं खुद ही अपना स्वास्थ्य समाचार किसी प्रकार अपने हितैषियों की सेवा में पहुंचा देने की भरसक कोशिश करूंगा। मैं सदा के लिए अपनी स्थिति को अनुकूल स्थान खोज रहा हूं। इतना होने पर भी सर्व शक्तिमान् सर्वेश्वर की अचिन्त्य इच्छा को समझना मेरे समान तुच्छ जीव की सामर्थ्य से बाहर है। यदि भगवान् की अघट घटना कुशल इच्छा से कुछ स्वस्थ हुआ तो पुनः भी अवस्थानुसार यथाशक्ति सम्प्रदाय की सेवा में प्रवृत्त होऊंगा। अधिक शुभ।

दरभंगा
१०-९-२८

आपका अनुगत
पं० किशोरदास।

॥ श्रीसर्वेश्वरो विजयतेतमाम् ॥

॥ श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः ॥

सविशेषनिर्विशेष श्रीकृष्णस्तवराजकी व्याख्या

वेदान्ततत्त्वसुधा

श्रीवृन्दावननिवासी

पं० श्रीकिशोरदास विरचित ।

यही

श्रीभगवन्निम्बार्कपादपद्माश्रिताश्रित

बाबू श्री बलदेवसहायजी-इन्चार्ज

"असिस्टेण्ट सिटलमेण्ट आफीसर ग्वालियर-स्टेट" की

सम्पूर्ण सहायता से

ग्रन्थकारद्वारा—

मुद्रापित तथा प्रकाशित ।

काशीस्थ-विद्याविलास प्रेस, नाम्नि यन्त्रालये मुद्रिता ।

१ संस्करण १०००] संवत् १९८५ वि० [विनामूल्य वितरित ।

सन् १९२८ ईशवीय

श्रीसर्वेश्वरो विजयतेतमाम् ।

श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः ।

समर्पण

श्रीहरिकरकमलकलित श्रीसुदर्शनावतार महामण्डलाचार्यचक्रचूडा-
मणि श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रोपबृंहित भेदाभेदव्रह्मन्तपथ-
प्रतिष्ठापनैकधिकर्त्र श्रीमत्स्वभूदेवाचार्यचरणनलिनचञ्चरीक-
श्रीराधादामोदरचरणारविन्दमकरन्दमिलिन्द श्रीमन्नर-
हरिदेवाचार्यचरणसंस्थापित श्रीवर्द्धमानपीठाधि-
ष्ठित परमपदप्रवासी श्रीभगद्भावपद
"श्रीश्री मधुसूदनशरणदेवाचार्यमहोदयके"
अमलकरकमलमें तदीयस्मृतिस्वरूप
सविशेषनिर्विशेषश्रीकृष्णस्तवराजकी यह हिन्दी-व्याख्या
"वेदान्ततत्त्वसुधा"
सादर सप्रेम समर्पित है ।

भाद्रवदी ८ श्रीकृष्ण
जयन्ती सं० १९८५
लहेरियासराय

समर्पक
भवदीयस्नेहार्द्रचित्त
पं० श्रीकिशोरदास,
श्रीवृन्दावनवासी ।

॥ श्री सर्वेश्वरो विजयते ॥

श्री भगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः ।

वेदान्ततत्त्वसुधा की

भूमिका

इस "**सविशेषनिर्विशेष श्रीकृष्णस्तवराज**" के प्रणेता, निवृत्तिमार्गप्रदर्शक महर्षिवर भगवत्सनत्कुमारसन्ततिप्रवर्तक, **भेदाभेदत्रय**न्तपथप्रतिष्ठापनदेशिक, श्रीभगवद्वासुदेवकरकजोद्भावक, चक्रराज श्रीसुदर्शनावतार, महीधरकवालाचार्यचक्रचूड़ामणि श्रीभगवन्निम्बार्क महामुनीन्द्र हैं। द्वापरान्त में तदानीं नष्टप्राय भगवदीयानादिवेदान्तसन्ततिके प्रवर्तनार्थ--

"**सुदर्शन** ! महाबाहो ! कोटिसूर्यसमप्रभ ! ॥

अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय" ॥ इत्यादि भगवदाज्ञासे उक्त परमपूज्याचार्यचरणने अवनीतलमें अवतीर्ण हो तैलङ्गदेशस्थ वैदूर्यपत्तनके निकटवर्त्ती श्रीअरुणाश्रम को विभूषित किया। इनके पूज्य पितृचरण का पवित्र नाम श्री **अरुण** मुनि तथा माता का नाम श्रीजयन्ती देवी था। पूर्वोक्त आचार्यचरण ने दस वर्ष की अवस्था ही में स्वपितृचरणसे विधिपूर्वक साङ्ग समस्त वेदों का अध्ययन कर लिया था।

तदनन्तर देवर्षिप्रवर श्री **नारदजी**के मुखकमलसे 'परमपवित्र मधुपुरी में वासुदेव **श्रीकृष्ण** भगवान् प्रादुर्भूत हुए हैं' यह श्रवणकर आपने व्रजभूमि में शुभागमन किया, और नन्दके घरमें साक्षात् पुरुषोत्तम **श्रीकृष्ण का** दर्शन कर निखिलतत्त्वद्रष्टा श्रीनारदमुनिके उपदेशानुसार सर्ववेदान्तशास्त्रार्थगर्भित, गम्भीराशय इन पचविंश श्लोकोंसे वेदान्तवेद्य, सकलकल्याणगुणगणजलधि, दिव्याद्भुतविग्रह, जगज्जन्मादिहेतु श्रीकृष्ण परब्रह्मकी स्तुति की। इसी कारणसे अल्पकलेवर होनेपर भी अनादि वैदिकसत्सम्प्रदाय (श्री **निम्बार्कसम्प्रदाय**) में यह स्तवराज अत्यन्त समादरणीय है।

इस स्तवराजपर पदवाक्यप्रमाणपारावारीण विद्वद्वर श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद प्रभृतिने संस्कृतमें अनेकानेक सविस्तर व्याख्यान रचना किए हैं। इन व्याख्यानोंके समवलोकनसे यह स्पष्टतया सिद्ध होता है कि इस स्तवराजके भावगर्भित मनोहर छन्दों का प्रत्येक पद **उपनिषद्** तथा व्यास सूत्रों को लक्ष्य करके ही विरचित हुआ है। अतः इसको वेदान्तदर्शन की याथात्म्यप्रतिपादक, अल्पाक्षर, अतिगम्भीराशय एवं सर्वपुरातन **कारिका** कहना भी अत्युक्तिबोधक न होगा। इस स्तवराजके **श्रुत्यन्तसुरद्रुम** नामक संस्कृत व्याख्यानमें विद्वद्वर श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद

महानुभावने परमात्मा को निर्गुण तथा सगुणादि प्रतिपादक परस्परविरोधाभासमात्र नानाविध **वेदवाक्यों का** समन्वय जिस सरलशैली तथा अकाट्ययुक्तियों द्वारा किया है, वह हृदयग्राही और वर्णनातीत है। यही सब कारण है कि समस्त विद्वन्मण्डली में उक्त ग्रन्थरत्न का अत्यन्त आदर हुआ है।

सम्प्रति अधिक न कहकर यह अवश्य कहेंगे कि नश्वर और मोहमाया तथा ममता पूरित अतः कष्टदायी होनेपर भी आपाततो रमणीय इस जगत्प्रपञ्चसे उद्धार चाहनेवाले एवं **'यद्गत्वा न निवर्तन्ते'** अर्थात् जिस स्थान को प्राप्त, हो पुनः वहांसे इस दुःखमय असार संसारमें आना नहीं होता है, ऐसे परमधाम की कामनावाले अथ च श्रीभगवद्धाम प्रवासियों के लिए मुमुक्षुजनजीवातु यह स्तवराज अद्वितीय सरल साधन है। ऐसे परमोपादेय इस स्तवराजरत्नके अति गम्भीराशय को वेदान्ततत्त्वजिज्ञासु स्वसम्प्रदायी वैष्णवजन सुगमता से यत्किंचित् हृदयङ्गम करसकें इसलिए वर्त्तमान कालमें प्रचलित हिन्दी भाषा में इसका संक्षिप्त एवं यथासाध्य सरल अर्थ किया गया है।

इस स्तवराजमें श्रीभगवान् का स्वरूप–गुण–शक्ति उनके अवतार–और कर्मादिकी दिव्यता भगवद्धामकी महिमा–धाम का मार्ग–चराचर जगत् और भगवान् का सम्बन्ध–इत्यादि विषयों का युक्तिप्रमाणपूर्वक सरल शास्त्रीय वर्णन है। इस लिए यह सम्प्रदायी वैष्णवों को नित्यपाठोपयोगी भी है। आशा है जिज्ञासुजन सायं–प्रातः इस का पाठ तथा अर्थानुसन्धान कर कृतकृत्य होंगे और हमारे परिश्रम को भी सफल करेंगे।

बीस वर्षसे अधिक व्यतीत हुए **वर्द्धमान** स्थान में इसी २५ श्लोकी की विस्तृत संस्कृत व्याख्या मेरी दृष्टि गोचर हुई थी, उसमें किसी २ श्लोक की टीका अपूर्ण थी, बीच २ में कीट पतङ्गोंने भी छिदकर दिए थे इस व्याख्याके आदिम श्लोक की अवतरणिकामें यह लिखा है–कि "नन्दगृहे साक्षाच्छ्रीकृष्णं दृष्ट्वा तं स्तौति भगवन्निम्बार्कः" अर्थात् नन्दके घरमें साक्षात् श्रीकृष्णके दर्शन कर **शान्ति कान्ति** इत्यादि श्लोकोंसे भगवन्निम्बार्क स्तुति करते हैं। इस व्याख्या की समाप्तिमें भी लिखा है–**भगवन्निम्बार्कविरचित-सविशेषनिर्विशेषश्रीकृष्णस्तवराजः**" अर्थात् यह स्तवराज भगवन्निम्बार्क का बनाया हुआ है। किन्तु अद्यावधि अन्य समस्त जो स्वसम्प्रदाय ग्रन्थ मेरी दृष्टि गोचर हुए हैं, उनमें इस २५ श्लोकी का जहां प्रमाणरूपसे उल्लेख किया है, वहां इसको **'पूर्वाचार्योक्तः'** पूर्वाचार्य की उक्ति लिखा है। इसके अतिरिक्त **'श्रुत्यन्त-सुरद्रुम, श्रुत्यन्तकल्पवल्ली, श्रुतिसिद्धान्तमंजरी'** ये तीनों संस्कृत व्याख्यायें इसी २५ श्लोकी की **"चौखम्बा** संस्कृत सीरीज, बनारस सिटी" में छप चुकी हैं, इनमें भी इसको **पूर्वाचार्यप्रणीत** ही लिखा है। तात्पर्य यह है कि केवल वर्द्धमान

स्थानमें देखी हुई उक्त व्याख्या को छोड़कर अन्य किसी ग्रन्थमें इस स्तवराजको आद्याचार्य–भगवन्निम्बार्क महामुनीन्द्र विरचित नहीं लिखा है । मैंने इस 'तत्त्वसुधा' के १मश्लोक की अवतरणिका तथा भूमिकामे एकमात्र वर्द्धमानमें देखी हुई उक्त व्याख्याके अनुसार ही १मसंस्करणमें इसको आद्याचार्य श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्र विरचित लिखा था। और इस २यसंस्करणमें भी ऐसाही रहने दिया है । इधर इस स्तवराजका अधिकानुशीलन, एवं इसमें प्रतिपादित विषयोंपर सूक्ष्मविवेचन, तथा श्रीआद्याचार्यचरणविरचित सूत्रवाक्यार्थके साथ इसके विषयों का तुलनात्मक मिलान और मनन करनेसे स्वयं मैं इस सिद्धान्तपर उपनीत हुआ हूं कि यह स्तवराज श्रीआद्याचार्य विरचित नहीं है, तथापि इस विषयके **तात्त्विक** अन्वेषण की पूर्ण आवश्यकता है । शारीरिक अस्वस्थताके कारण मुझमें अब सामर्थ्य नहीं कि परिश्रमपूर्वक इस विषय का खोज करसकूं । आशा और प्रार्थना करता हूं–कि स्वसम्प्रदाय विद्वान्गण इसका पूरा २ अन्वेषण कर इस विषयपर समुचित प्रकाश डालनेकी कृपा करेंगे । इस स्तवराजमें सम्प्रदायके समस्त सिद्धान्तका समावेश है अतः यह स्तवराज इस सम्प्रदायके वैष्णवोंको परमोपादेय है–चाहे यह इस सम्प्रदायके किसी भी श्रीपूर्वाचार्यपादका बनाया क्यों न हो, यह सम्प्रदायके वैष्णवमात्र का सर्वप्रकारसे समादरणीय रत्न है, इसमें सन्देह नहीं । इसकी रचना विद्वत्तापूर्ण और आश्चर्यावह है । इस का आशय अतिगम्भीर तथा सम्पूर्ण साम्प्रदायिक वेदान्तसिद्धान्तसे परिपूर्ण है ।

अभी थोडेदिन हुए **'चौखंबा** संस्कृत सीरीज' में इस २५ श्लोकोंकी **श्रुत्यन्त**कल्पवल्ली नामक संस्कृत व्याख्या मुद्रित हुई है, उसके प्रूफ संशोधक व्याकरणाचार्य **'श्रीगोपाल** शास्त्री नेने' महोदयने उक्त व्याख्या के आरम्भमें स्वलिखित भूमिका में आद्याचार्यचरण सुदर्शनावतार श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्र का गुर्जराधिपति कुमारपालके राज्याभिषेक के समय में विद्यमान रहना माना है,–वह ठीक नहीं है । उक्त पूज्यपादाचार्यका समय श्रीकृष्णावतार के समीपका है । निर्णयसिन्धु प्रभृति स्मार्त ग्रन्थों में भी इनका समय श्रीव्यासदेवके समकालका लिखा है । अधिक जिज्ञासु मेरा लिखा हुआ 'श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्र' नामक ट्रेक्ट देखें । उक्त शास्त्री जी महोदयको इस सम्प्रदायके विषयमें ऐतिहासिक मनन तथा सिद्धान्त ग्रन्थोंके अवलोकन करनेका यह प्रथम अवसर है, इस लिए उनका इस सम्प्रदायके वास्तविक इतिहासानभिज्ञों के आधार पर ऐसा लिखना या मानना स्वाभाविक है । हां यह सम्भव हो सकता है, कि गुर्जराधिप कुमारपालके समयमें श्री आद्याचार्यचरण के परवर्त्ती अन्य इस सम्प्रदायके प्रधान प्रचारक श्रीआद्याचार्यपादपीठाधिकृत तत्कालीन आचार्यचरण श्रीनिम्बार्काचार्यके नामसे सुप्रसिद्ध हों, और ऐसी साम्प्रदायिक प्रथा है । द्वितीयतः उक्त भूमिकामें उक्तशास्त्रीजीने

श्रीहरिव्यासदेवाचार्यको जगद्विजयी श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्यका बालक होना लिखा है, यह भी अयथार्थ है । किन्तु श्रीकेशवाचार्यजीके शिष्य श्रीश्री भट्टदेवाचार्य हैं और इनके शिष्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य हैं । श्रीकेशवाचार्यजी दाक्षिणात्य तैलङ्ग ब्राह्मण थे-और श्रीश्रीभट्टदेवाचार्य-तथा श्रीहरिव्यासदेवाचार्य ये दोनों महानुभाव मथुराके आदिगौड ब्राह्मण थे-इनके ज्ञातृवंशज अभीतक मथुरामें विद्यमान हैं, और वे श्रीश्रीभट्टजीके गोस्वामी कहलाते हैं-एवं इसी सम्प्रदायके अनुगामी हैं ।

हमारी उत्कट इच्छा थी कि इस २य संस्करणमें इस पुस्तकमें और कुछ सिद्धान्त विषयसंयुक्तकरदें, किन्तु चारमाससे बराबर रोगग्रस्त होनेके कारण ऐसा नहीं कर सके । तथापि जहांतहां कुछ २ संशोधनादि करदियागया है ।

अन्तमें हम ग्वालियर राज्यान्तर्गत **गोहद** प्रान्तनिवासी श्रीवास्तव्यकायस्थकुलभूषण वैष्णवर मनीषी (मुंशी) **श्रीशिवसहायजी** के सुयोग्यपुत्र, **श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रपादपद्माश्रिताश्रित**, अस्थायी सिटलमेण्ट आफीसर ग्वालियर-स्टेट, वैष्णववर बाबू **श्रीबलदेवसहायजी** महोदय को अनेकानेक धन्यवाद देते हैं, जिनके अनुरोध तथा सम्पूर्ण आर्थिक सहायता से इस अस्वस्थावस्थामें भी हमें इसका २य संस्करण मुद्रित करा प्रकाशित कराना पड़ा । आशा है सम्प्रदायी वैष्णवगण इससे लाभ उठावेंगे । हम इस स्तवराजके प्रतिपाद्य स्वभक्तमुक्त भगवान **श्रीकृष्णसे** प्रार्थना करते हैं कि वे श्रीहरिगुरुभक्तिपरायण उक्त बाबूजी महोदय को चिरंजीवी एवं चिरसुखी रखें और उनके हृदयमन्दिरमें इस स्तवराजमें प्रतिपादित स्वज्ञानभक्ति तथा **'एकधा च बहुधा प्रदृश्यते यत्र यत्र तव बिम्बमात्मनः'** के अनुसार **भिन्नाभिन्न** स्वरूप अपनी दिव्यान्तरङ्गमूर्तिका प्रकाश करें ।

इति शुभम् ।

दरभंगा संवत् १९८८	श्रीभगवन्निम्बार्कमहा-
श्रीकृष्ण जयन्ती	मुनीन्द्रोपदिष्टैक-
शुक्रवार ता ७-९-	वीथिपथिक
२८ इस्वीय:	पं—श्रीकिशोरदास ।

* श्रीसर्वेश्वरो विजयते । *

श्री ६ भगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः ।

अथ सविशेषनिर्विशेषश्रीकृष्णस्तवव्याख्या

वेदान्ततत्त्वसुधा ।

पं०—किशोरदासविरचिता ।

यो ब्रह्मेशसुरर्षिवन्दितपदो वेदान्तवेद्यो हरि-
स्तं वन्दे मनसा गिरा च शिरसा श्रीश्रीनिवासं गुरुम् ॥
कण्ठे यस्य चकास्ति कौस्तुभमणिर्वेदान्ततत्त्वात्मको
भक्तेः श्रीर्हृदये शरण्यमगतेः कारुण्यसिन्धुं मुदा ॥१॥

श्रीहरिकरकमललालित, सुदर्शनावतार, श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्र श्रीनन्दके गृहमें साक्षात् श्रीकृष्णके दर्शनकर भगवत्तत्त्वप्रतिपादक सकलवेदान्तशास्त्रको अल्पबुद्धि मुमुक्षुजनोंके हृदय में सुखपूर्वक ग्रहण कराने की इच्छासे "शान्तिकान्ति" इत्यादि श्लोकों द्वारा जिज्ञासादिअधिकरणार्थोंको संग्रहकरतेहुए स्तोत्ररूपसे श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं—

शान्तिकान्तिगुणमन्दिरं हरिं
स्थेमसृष्टिलयमोक्षकारणम् ॥
व्यापिनं परमसत्यमंशिनं
नौमि नन्दगृहचन्द्रिनं प्रभुम् ॥ १ ॥

शान्ति तथा कान्तिगुणोंके निवासस्थान, उत्पत्ति, पालन, संहार तथा मोक्षके कारण, चराचरमें व्यापक, परमस्वतन्त्र, अंशी (अर्थात् जीव अंशहै—और भगवान् अंशी है) नन्दगृहको आल्हादित करनेवाले, प्रभु (सर्वसमर्थ) श्रीहरिकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

"अहं हरिं नौमि" मैं श्रीहरि (अर्थात् स्वाश्रितजनोंके पापहारी) की स्तुति करता हूं । "शान्तिकान्तिगुणमन्दिरम्" वह श्रीहरि शान्तिका-

न्ति इत्यादि गुणोंके मन्दिर नाम निवासस्थान हैं। तात्पर्य्य यह है कि एक स्वरूपगुण तथा द्वितीय विग्रहगुण इन भेदोंसे गुण दो प्रकारके हैं, तिनमें शान्तिशब्द स्वसमानाधिकरणवृत्ति ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य्य, तथा कारुण्य वात्सल्य क्षमा दयादि स्वाभाविक स्वरूपगुणोंके उपलक्षणार्थ है। वैसे ही कान्तिशब्द भी स्वसमानाधिकरणवृत्ति सौन्दर्य्य सौकुमार्य्य लावण्य सौगन्ध्य सौरस्यादि विग्रहगुणोंके उपलक्षणार्थ है। अर्थात् श्रीकृष्ण शान्त्युपलक्षित ज्ञान कारुण्यादि स्वरूपगुण तथा कान्त्युपलक्षित सौन्दर्य्यादि स्वभाविक विग्रहगुणोंके मन्दिर नाम निवासस्थान हैं। तथा श्रुति—"स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च, सर्वगन्धः सर्वरसः हिरण्यकेशः हिरण्यश्मश्रुः, आप्रणखात्स सुवर्णः, यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णमित्यादि"। "स्वेनस्वाभाविकमोक्षकारणम्" श्रीहरि नामरूपोंसे व्याकृत (विकारी) विविधप्रकारसे विभक्त, भोक्तृसंयुक्त, नियतदेशकाल और फलोपभोगाश्रय (फलोंके भोगका स्थान) तर्कागोचररचनायुक्त इस जगत्की उत्पत्ति पालन प्रलय तथा मोक्षके कारण हैं, अर्थात् श्रीहरिसे यह जगत् उत्पन्न होता है और हरि ही इसका पालन तथा प्रलय एवं इससे मोक्ष करते हैं। श्रुति-"अतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति॥ यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्ब्रह्म तद्विजिज्ञासस्व"। अब परमाणुको ही जगत् कारणमाननेवाले तार्किकोंके मतका निराकरण करते हैं—"व्यापिनम्" जगत्का कारण व्यापक ब्रह्म (श्रीहरि) हैं। "यच्च किञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा॥ अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः"॥ "परमसत्यम्" परमशब्द स्वतन्त्रतावाचक और सत्यशब्द सत्ताश्रयवाचक है, अर्थात् श्रीहरि ही स्वतन्त्रसत्ताके आश्रय नाम परमस्वतन्त्र परमात्मा हैं। श्रुति "आत्मा हि परमस्वतन्त्रोऽधिगुणः" इससे यह फलित हुआ कि ब्रह्मरुद्रादि स्वतन्त्रसत्ताके आश्रय नहीं है, अतः प्राप्तैश्वर्य्य जीव हैं, और श्रीहरि ही स्वतन्त्र सत्ताश्रयहोनेसे परब्रह्म हैं। "अंशनम्"। "अंशो नानाव्यपदेशात्, ममैवांशो जीवलोके, अंशो ह्यप परस्य" इत्यादिशास्त्रोक्त स्वात्मीयभूत जीववर्ग आप के शक्तिरूप अंश हैं और आप उनके अंशी हैं। अर्थात् जीववर्गके नियन्ता अन्तरात्मा श्रीहरि हैं। अथवा 'अंशि' विभागे इस धातुसे शीलार्थक 'इन्' प्रत्यय करनेसे यह अर्थ होता है

कि श्रीहरि तत्तदधिकारानुरूप अर्थ धर्म्म काम मोक्षरूप पुरुषार्थ-फलों को उन उन अधिकारी विशेषोंके लिये विभाजितकर देते हैं। "नन्दगृहचन्दिनम्" ॥ श्रीहरि नन्दगोपगृह नाम व्रजमण्डलके आनन्द दाता हैं। "प्रभुम्" "पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते" इस श्रुयुक्त सर्वा-चिन्त्य अनन्त स्वाभाविक शक्तिके आश्रय होनेसे श्रीहरि प्रभु नाम सर्वसामर्थ्ययुक्त हैं ॥ १ ॥

अब श्रीहरिमें सविशेष तथा निर्विशेषवाक्योंका समन्वयप्रकार दिखाते हुए स्तुति करते हैं—

निर्गुणं तदिति वैदिकं वचोऽ-
विद्यया त्वयि विशेषणासहे ॥
वस्तुतोऽखिलविशेषसागरे
नो विरुद्धमिति तावदस्तु मे ॥ २ ॥

हे हरे ! ब्रह्म (परमात्मा) निर्गुण है, यह वेदका वचन भी आपमें विरुद्ध नहीं, किन्तु समञ्जस है, क्योंकि आप समस्त अविद्या और तत्सम्बन्धी हेय धर्म्म रहित हैं, अतः निर्गुण (निर्विशेष) हैं। और वास्तवमें तो आप समस्त सद्गुणोंके सागर हैं। इससे सवि-शेष भी हैं। पूर्वोक्त (हेयगुणरहित और सद्गुणसागर) आपके स्व-रूपका आविर्भाव मेरे वेदान्तमतानुगामीके लिये सर्वदा हो, यह प्रार्थना है ॥ २ ॥

"तद् (ब्रह्म) निर्गुणमिति वैदिकं वचस्त्वयि (ब्रह्मणि) नो विरुद्धम्" हे श्रीहरे ! "केवलो निर्गुणश्च" ब्रह्म निर्गुण है, यह वैदिक-वचन भी आप में विरुद्ध नहीं, किन्तु समञ्जस है। क्यों कि आप "अविद्यया विशेषणाऽसहे" समस्त अविद्या और तत्कारणक धर्म्मसम्ब-न्ध रहित हैं। अर्थात् हे हरे ! आपमें स्वभावसे ही समस्त कर्म क्लेश विपाकादि अविद्यक हेयधर्म्मोंका अभाव है, और आप को निर्गुण प्रतिपादनकरनेवाले वेदवचन भी आपमें अविद्यक हेय विशे-षणोंका निषेध करते हैं, इससे आप निर्गुण हैं । "वस्तुतोऽखिलविशे-षसागरे" हे श्रीकृष्ण वास्तवमें तो आप सकल ज्ञानशक्त्यादि अ-नन्तासंख्य कल्याणगुणोंके सागर हैं, अतः सविशेष हैं। श्रुति "यः सर्वज्ञः सर्ववित्, यस्य ज्ञानमयं तपः, सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः, स्वाभाविकी

ज्ञानबलक्रिया च" । "इति तावदस्तु मे" हे हरे ! पूर्वोक्त समस्तहेयगुणरहित तथा कल्याणगुणसागर आपके स्वरूपका उपनिषन्मतानुगामी, मेरे लिये सर्वदा आविर्भाव हो । यह प्रार्थना है ॥ २ ॥

अब "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इस श्रुत्यर्थको संग्रह करते हुए स्तुति करते हैं—

त्वत्समो यदि ह नास्ति चेतनः
कस्तदाऽधिकगुणाकरः प्रभुः ॥
त्वां प्रयामि शरणं शरण्यकं
पुण्डरीकनयनं सुधानिधिम् ॥ ३ ॥

हे श्रीहरे ! शास्त्र तथा लोकमें यदि चेतन (जीवात्मा) ही आप के सदृश नहीं है, तब आपसे अधिक गुणवाला समर्थ अन्य कौन हो सकता है, अतएव मैं माधुर्यादिसुधाओंके निधि, कमलनयन, ब्रह्मादिकोंके रक्षक, आप के शरणमें प्राप्त हूं ॥ ३ ॥

"यदि ह चेतनस्त्वत्समो नास्ति, तदाऽधिकगुणाकरः प्रभुः कः" ह स्फुटार्थक है । हे श्रीकृष्ण ! शास्त्र तथा लोकमें यदि चेतन (जीवात्मा) ही आपके सदृश नहीं है, तब आपसे अधिक गुणाकर और प्रभु नाम समर्थ अन्य कौन हो सकता है, अर्थात् कोई नहीं । श्लोकमें त्वच्छब्दसे श्रुत्युक्त सच्छब्दकी व्याख्या की है, और श्रुतिमें सच्छब्द असत्कार्यवाद व्यावृत्तिके लिये है । स्वतन्त्रसत्ताके आश्रय का निर्देश करके आसीच्छब्दका 'तत्त्वाग्रे' इस पदोक्त पूर्वकालवाची पदार्थके साथमें अन्वय है । एवकार अधिकव्यावृत्त्यर्थक है । अद्वितीयशब्द समानव्यावृत्त्यर्थ है । एकशब्द मुख्यार्थवाची है । इससे सिद्ध हुआ कि सर्वोत्कृष्ट, एक, अपने समान तथा अधिक रहित, जगत्के कारण सद्वस्तु परब्रह्म श्रीहरि ही हैं । "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" इस श्रुति का पूर्वोक्त श्रुत्यर्थके साथ ऐक्यार्थ भी है, इससे उक्त अर्थ ही शास्त्रसम्मत है । "यस्मादेवं तस्मात्त्वां शरण्यकं शरणं प्रयामि" हे हरे ! आप ऐसे सर्वोत्कृष्ट हैं, अतः आपके गुणोंका लुब्धक मैं चतुर्मुखादि के भी शरण में साधु अथवा सर्वसाधारणकी रक्षा में साधु अतएव सुखस्वरूप आप की शरणमें प्राप्त होता हूं, (आप मेरी रक्षा करें) श्रुति "सर्वस्य शरणं सुहृत्" । "पुण्डरीकनयनम्" हे हरे ! आपके नेत्र प्रफुल्लितकमलके

सदृश हैं। श्रुति "सत्पुण्डरीकनयनम्"। "सुधानिधिम्" हे श्रीकृष्ण! आप माधुर्य्य, सौन्दर्य, लावण्य तथा सौकुमार्यादि गुणरूप सुधाओंके निधि नाम आधार हैं॥ ३॥

त्वां विशिष्टगुणमात्मसुप्रियं
दर्शनीयमुखपङ्कजश्रियम्॥
स्पर्शनीयतनुवल्लरीश्रियं
सेवनीयपदपङ्कजद्वयम्॥ ४॥

मैं (जीव) सर्वोत्तम आनन्दादिगुणोंसे युक्त, अनन्याश्रित जीवात्माओंके प्रिय, भक्तानुग्रहप्रकाशक, अतएव-दर्शनीय श्रीमुखकमलकी शोभासे सुशोभित, स्पर्शनीयशरीररूपलतासम्बन्धिनी शोभाविशिष्ट, भक्तों को अवश्य सेवने योग्य युगलचरणकमल हैं जिनके, ऐसे श्रीकृष्णकी शरणमें प्राप्त होता हूं॥ ४॥

"त्वां विशिष्टगुणम्" हे हरे! आप विशिष्ट नाम सर्वोत्तम दिव्यगुणयुक्त हैं। अर्थात् मोक्षहेतु होनेसे स्वरूपके समान आपके आनन्दादि गुण भी भक्तोंको सर्वदा उपासनीय हैं। श्रुति "आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन" इस श्रुतिने भगवद्गुणोंको स्वरूपके तुल्य उपास्य तथा मोक्षहेतु होना कहा है। अब वात्सल्यादिको प्रकाश करते हुए विशेषण देते हैं-"आत्मसुप्रियम्"। हे श्रीकृष्ण! आत्मा नाम स्वानन्याश्रित जीव विशेष आपको अतिप्रिय हैं, अथवा आत्मा नाम अपने एकान्ती ज्ञानी भक्तों को आप अतीवप्रिय हैं। गीता-"प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः, ब्रह्मगेदशो रमते तस्मिन्नु जीर्णे शयाने नैन जहात्यहस्सु"। अब प्रिय होनेमें हेतु कहते हैं-"दर्शनीयमुखपङ्कजश्रियम्" हे हरे! भक्तोंके अनुग्रहमें उन्मुख अतएव अत्यन्तकारुण्यप्रकाशक आपके मुखकमलकी शोभा अवश्य देखने योग्य है। "स्पर्शनीयतनुवल्लरीश्रियम्" हे श्रीकृष्ण! आपके शरीररूपलतासम्बन्धिनी श्रीनाम शोभा भी अवश्य स्पर्श करने योग्य है। अर्थात् आप अङ्ग प्रत्यङ्ग माधुर्य्य, लावण्य सौन्दर्य्यादिके निधि हैं। "सेवनीयपदपङ्कजद्वयम्" हे श्रीकृष्ण! सकाम तथा निष्काम सर्व साधारणको स्वाभिलषित पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये आपके दोनों चरणकमल सेवने योग्य हैं, क्यों कि आपके चरणारविन्दके आश्रय के विना किसी भी कार्य्यकी सिद्धि नहीं होती है।

पूर्वोक्त तीनों पद नखकमलसे शिखापर्य्यन्त ध्यानके उपलक्षणार्थ हैं। श्रुति "आनन्दमूर्त्तिमसूर्ते यदिभाति, यदात्मको भगवांस्तदात्मिका व्यक्तिः, किमात्मको भगवान्? ज्ञानात्मक ऐश्वर्यात्मकः" ॥ ४ ॥

अथ ब्रह्मादिकोंके पूज्य सर्वशरण्य भगवान् की सर्वोत्कृष्टता प्रकाशित करते हुए कहते हैं—

ब्रह्मरुद्रसुरराजऽस्वर्चितं
पर्चितश्च रमयाङ्कमालया ॥
चर्चितश्च नवगोपबालया
प्रेमभक्तिरसशालिमालया ॥ ५ ॥

ब्रह्मा रुद्र और इन्द्रसे सम्यक्तया पूजित अङ्कपर्य्यन्त लम्बमानमालाविशिष्ट श्रीलक्ष्मी देवीसे नित्यसम्बन्ध द्वारा सेवित, प्रेमभक्तिरसस्वरूप आप (श्री कृष्ण) को संवेष्टनकरनेवाली अत एव आपकी मालाके सदृश मालारूपः नवीन गोपबाला नित्यप्रेमाधिष्ठात्री श्रीराधिकादेवी से चर्चित श्रीहरिकी शरणमें मैं (दास) प्राप्त होता हूं ॥ ५ ॥

"ब्रह्मरुद्रसुरराजस्वर्चितं" हे हरे! ब्रह्मा रुद्र और इन्द्र से स्वर्चित अर्थात् ब्रह्मादिकोंके अर्चन, ध्यान, स्तवनादिके सर्वोत्तम विषय भी आप ही हैं। क्योंकि ब्रह्मादिदेवगण आपसे ही उत्पन्न हैं और आपके दिये हुए ऐश्वर्यके भागी तथा आपके शासनका विषय हैं। अतः सबकी स्तुतिका सर्वश्रेष्ठ विषय भी आपही हैं। श्रुति "यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्च", स्मृति "ब्रह्माद्याः सकला देवा मनुष्याः पशवस्तथा ॥ विष्णुमायामहावर्त्तमोहान्धतमसावृताः"। "अङ्कमालया रमया पर्चितश्च" हे श्रीकृष्ण! आप अङ्कपर्य्यन्त लम्बमानमालावाली श्रीलक्ष्मी देवीसे पर्चित नाम नित्यसम्बन्ध द्वारा सेवित हैं। श्रुति "श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्। "प्रेमभक्तिरसशालिमालया नवगोपबालया चर्चितश्च" । हे श्रीकृष्ण! प्रेमभक्तिरसस्वरूप आपको संवेष्टनकरनेवाली अतएव आपकी मालाके सदृश मालारूप नवीनगोपबाला नित्यप्रेमाधिष्ठात्री श्रीराधिका देवीसे आप संयुक्त हैं। श्रुति "बल्लवीवदनाम्भोजमालिने"। अथवा प्रेमभक्तिरसके विषय अतः शोभनशील श्रीकृष्ण मालाके सदृश जिसकी माला हैं, उस नवीनगोपबालिका श्रीराधिकासे युक्त श्रीकृष्ण हैं। चकार भूमिरूपिणी श्रीसत्यभामा

के उपलक्षणार्थ है, अर्थात् श्रीकृष्ण सत्यभामाके भी वैसेही प्रिय हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रेयस्काम सत्सम्प्रदायी वैष्णवोंको सर्वदा श्रीलक्ष्मी राधिका तथा सत्यभामाके सहित श्रीकृष्ण ध्येय हैं ॥ ५ ॥

अब श्रुतिद्वारा श्रीपुरुषोत्तमसे समस्तवस्तुकी पृथक्सिद्धताका निराकरण करतेहुए भगवान्की सर्वविलक्षणता दिखाते हैं—

किञ्च किञ्चिदिह विद्यते न हि
त्वां विनाऽण्वपि तथाऽखिलेश्वर ! ॥
नेतिनेति च निषेधिताश्रय-
स्तद्विशेषविषयोऽपि सम्मतः ॥ ६ ॥

हे सकलेश्वर ! इस लोक तथा वेदमें आपके विना (अतिरिक्त) कोई अणुमात्र भी वस्तु नहीं हैं। 'नेति नेति' इस श्रुतिसे निषेधको प्राप्त तथा उस (निषेध) के विशेषविषय भी आप ही हैं। यह सिद्धान्त शास्त्रसम्मत है ॥ ६ ॥

"किञ्च" और भी कहते हैं। "हे अखिलेश्वर ! इह त्वां विना अण्वपि किञ्चित्र विद्यते" हे समस्त जगत्के ईश्वर, अर्थात् नियामक ! इस लोक तथा वेदमें आपके विना कोई अणुमात्र भी वस्तु नहीं है, अर्थात् आपसे पृथक्सिद्ध स्वतन्त्रसत्तावाली कोई भी वस्तु नहीं हैं। क्योंकि सर्वचेतनाचेतन जगत् आपका उपादेय, त्वदात्मक अर्थात् आपका स्वरूप एवं व्याप्य तथा आधेय है। और उपादेय, आत्मीय, व्याप्य तथा आधेयादि वस्तु स्वोपादान-स्वात्म व्यापक तथा आधारादिसे पृथक्सिद्ध नाम भिन्नोपलब्ध नहीं हो सकती है। स्मृति "न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्। सत्यं स्वातन्त्र्यमुद्दिष्टं तच्च कृष्णे न चापरे ॥ अस्वातन्त्र्यात्तदन्येषामसत्त्वं विद्धि भारत"। अब श्रीकृष्णकी सबसे विलक्षणता दिखलाते हैं—"नेति नेति च निषेधिताश्रयस्तद्विशेषविषयोऽपि सम्मतः" हे श्रीहरे ! "नेति नेति" इस श्रुतिसे निषेधको प्राप्त प्राकृतस्थूलत्वादिके अभावरूप (जो) विलक्षणता (तिस) के आश्रय, तथा उस निषेधसे विशेष नाम आधिक्यके विषय अर्थात् भूमत्वप्रतिपादनके विषय भी आपही शास्त्रसम्मत हैं। तात्पर्य यह है कि भगवत्के स्वरूप और गुणोंकी सीमाके निषेध द्वारा ही निषेधशास्त्रका भी अन्वय (तात्पर्य) आप में है। "प्रकृतैतावत्त्वं प्रतिषेधति

ततो ब्रवीति च भूयः" इस न्यायसे "अथात आदेशो नेति नेति" इत्यादिश्रुतियां भी परमात्मामें प्रकृतिगत स्थूलत्वादि प्राकृतसम्बन्धको ही निषेध करती हैं, न कि ब्रह्मके स्वाभाविक कल्याणविशेष गुणोंको, यह शास्त्रसे निश्चय होता है। क्योंकि पुनः आगे भूयस्त्व (बहुत्व) करके श्रुतियां भगवद्गुणोंका प्रतिपादन करती हैं। अन्यथा निषेधके अनन्तर भूयस्त्वरूपसे गुणादिका प्रतिपादन असङ्गत होगा। "अथात आदेशो नेति नेति" यह कह करके पुनः उत्तरमें "न ह्यस्मादिति नेत्यन्यत्परमस्ति. अथ नामधेयम्, सत्यस्य सत्यं, प्राणा वै सत्यं, तेषामेष सत्यम्" इन श्रुतियोंसे भगवद्गुणों का भूयस्त्व श्रवण होता है ॥ ६ ॥

अब ईश्वरमें परस्पर विरुद्धधर्मोंके अविरोधप्रकारको वर्णन करतेहुए भक्तिकी प्रार्थना करते हैं—

त्वय्यणुत्वसुमहत्त्वभागिनि
सर्वशक्तिबलयोगशालिनि ॥
भक्तिरस्तु मम निश्चला हरे !
कृष्ण ! केशव ! महत्तमाश्रये ॥ ७ ॥

हे हरे ! हे कृष्ण हे केशव ! जीव तथा आकाशादिके अन्तरात्मरूपसे स्थित, सर्वशक्तिबलयोगोंसे सुशोभित तथा श्रीनारदव्यासादिकोंके आश्रयणीय आप में सर्वदा मेरी निश्चला भक्ति हो ॥ ७ ॥

"हे हरे ! हे कृष्ण ! हे केशव ! त्वयि मम निश्चला भक्तिरस्तु" हे हरे नाम स्वाश्रयदोषापहारक ! हे कृष्ण नाम सच्चिदानन्दस्वरूप ! हे केशव अर्थात् ब्रह्मा और शिवके जनक ! आपमें मेरी चलनव्यवहार शून्या ध्रुवा भक्ति हो, यह प्रार्थना है। "अणुत्वसुमहत्त्वभागिनि" हे श्रीकृष्ण ! आप अणुत्वादिभजनशील अर्थात् अणुपरिमाणक जीवके तथा महत्परिमाणक आकाशादिके अन्तरात्मरूपसे अवस्थान करते हैं अतः आप अणुत्व एवं सुमहत्त्वभागी हैं। "अणोरेष आत्मा चेतसा वेदितव्यः, य आत्मनि तिष्ठन् य आकाशे तिष्ठन्" । अथवा हे श्रीकृष्ण ! आप अणुपरिमाणक जीवके अन्तरात्मा होनेसे जीवसे भी अणु तथा बृहत्परिमाणक आकाशादिसे भी महत् हैं, अतः अणुत्वमहत्त्वभागी हैं। अणुत्वमहत्त्वके परस्परविरोधपरिहारार्थ विशेषण देते हैं—"सर्वशक्तिबलयोगशालिनि" हे श्रीकृष्ण ! आप सर्वशक्तिबलयोगोंसे सुशोभित

हैं। "शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः ॥ ततो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः ॥ भवन्ति तपतां श्रेष्ठ! पावकस्य यथोष्णता, सर्वेशता च"। भावार्थ यह है कि श्रीकृष्ण अनन्ताचिन्त्यस्वाभाविकशक्त्यादियोगयुक्त हैं, अतः अणुत्व तथा महत्त्वभागी होनेमें कोई विरोध नहीं है। "महत्तमाश्रये" हे श्रीकृष्ण! आप महत्तम श्रीसनत्कुमार नारदादिकोंके आश्रयणीय हैं। "यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्च"। अथवा महत्तम जो वेद तिसके प्रतिपाद्यरूप आश्रय भी श्रीकृष्ण हैं। "सर्वे वेदा यत्रैकी भवन्ति"। यद्वा हे श्रीकृष्ण! आप महत्तम नाम ज्ञानैश्वर्य्यादिमहद्धर्म्मोंके आश्रय हैं। "य सर्वज्ञः सर्ववित्" ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥ ७ ॥

अब तत्त्वमस्मादिवाक्यार्थका अनुसन्धान करते हुए स्तुति करते हैं–

तत्त्वमादिपदवाच्यविष्णवे
जिष्णवेऽखिलगुरो! भविष्णवे ॥
आत्मनां यमयते प्रतेजसे
नौमि ते मधुरिपो! महौजसे ॥ ८ ॥

हे मधुरिपो। आप तत्त्वमादिपदोंके वाच्य विष्णु, सर्वजयनशील, संकल्पमात्रसे बहुत होनेवाले, सबके प्रकाशक, चेतनोंके नियन्ता, महाबली एवं ब्रह्मादिकोंके उपदेशक हैं। अतः प्रयोजनरूप आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ८ ॥

"हे मधुरिपो!" हे मधुनाम दैत्यके शत्रो! अथवा मधुरूपसे दृश्यमान अतएव इन्द्रियों द्वारा ज्ञानादिप्रतिबन्धक शब्दादिविषयों के रिपु नाम नाशक! श्रीकृष्ण आप "तत्त्वमादिपदवाच्यविष्णवे" तत् तथा त्वम् आदि पदोंके वाच्य नाम शक्य विष्णु (व्यापनशील) हैं, अर्थात् 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यस्थ 'तत्' और 'त्वम्' इन दोनों पदोंके शक्य विष्णु परमात्मा भी आप ही हैं, 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यमें मुमुक्षुध्येय, ब्रह्मेशेन्द्रादिवन्दितपादपीठ, विश्वजन्मादिहेतु, भगवान् श्रीवासुदेव तत्शब्दका अर्थ हैं, और त्वम्पदका अर्थ भगवदात्मीय, भगवदात्मक, परतन्त्र सत्ताका आश्रय जीवात्मा है। असिपद उभयपदार्थके सम्बन्धका वाचक है। यह सम्बन्ध तदात्मक त्वम्पदवाच्यका तत्पदार्थके सहित भेदका सहनशील अभेदरूप है, इस प्रकार विश्वात्मा

परब्रह्म सर्वशक्ति स्वतन्त्रसत्ताविच्छिन्न तत्पदार्थसे अभिन्न, तदात्मकचेतन त्वम्पदार्थत्वावच्छिन्न सर्वान्तर्यामी वासुदेव त्वम्पदका अर्थ है। भाव यह है कि तत्पदार्थ परमात्मा और त्वम्पदार्थ जीवान्तर्यामी इन दोनोंका अभेद है। जैसे "घटो द्रव्यं पृथिवी द्रव्यम्" घट भी द्रव्य और पृथिवी भी द्रव्य है, अर्थात् द्रव्यरूपसे घट और पृथिवीका अभेद है। यह वाक्यार्थ शक्य होनेसे मुख्य है, क्योंकि स्वतन्त्रसत्ताका आश्रय सर्वात्मा ब्रह्म सर्वशब्दोंका वाच्य है। यदि उक्त वाक्यार्थमें पंडितम्मन्य वादी शंका करे कि त्वम्पदकी प्रत्यगात्मा जीवमें ही शक्ति सुप्रसिद्ध है? तो हम उत्तर देते हैं कि समस्त वैदिकशब्द ब्रह्ममें ही शक्त हैं। जैसे "अग्नेर्ढक्" इस सूत्रमें अग्निशब्द अकारगकारादियुक्त आनुपूर्वीक अग्निशब्दवाचक है, एवं "अग्नौ जुहोति" यहां वही अग्निशब्द दहनप्रकाशनादिशक्ति युक्त वस्तुका विधायक है, किन्तु अग्निशब्दके पूर्वोक्त दोनों अर्थ ही शक्य होनेसे मुख्य अर्थात् ठीक हैं, यह शाब्दिकोंका सिद्धान्त है। वैसे ही ब्रह्मरुद्रादि चेतनाचेतन वस्तुमात्रके वाचक शब्द उन २ पदार्थोंके वाचक होकर भी उन सबके अन्तरात्म परब्रह्म वासुदेवके भी वाचक होते हैं, यह वेदान्तियों का सिद्धान्त है। क्योंकि वासुदेव सबके आत्मा हैं, अतः सर्वशब्दोंके वाच्य भी हैं। अतः उक्त सिद्धान्तमें कोई विरोध नहीं हैं। यथा चतुर्मुखपिण्ड और उसका चेतन अर्थात् शरीरी दोनों ही चतुर्मुख कहाते हैं, वैसे ही त्वम्पद जीव और उसके अन्तरात्मा परब्रह्म श्रीवासुदेवकाभी वाचक है। इसमें "नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति; सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" इत्यादि श्रुतियां भी प्रमाण हैं। विशेष देखनेवाले "श्रुत्यन्तसुरद्रुम" के ४८ पत्रमें देखें। "आत्मनो यमयते" हे श्रीकृष्ण! जीवात्माओंके नियन्ता भी आप ही हैं। श्रुति "य आत्मानमन्तरो यमयति"। नियन्तृत्वमें हेतु कहते हैं–"प्रतेजसे" हे हरे! आपका प्रकृष्ट तेज आदित्यादितेजोंका भी प्रकाशक है। श्रुति "येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः" (अत एव) "जिष्णवे" हे हरे! इसीसे आप सब सुरासुरोंके विजेता हैं। "भविष्णवे" हे श्रीकृष्ण! आप संकल्पमात्रसे बहुत होते हैं। श्रुति "सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय"। "महीजसे" हे हरे! आपका बल महत् नाम स्वभाविक है। श्रुति "स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च"। "ओजस्विने!" हे ब्रह्मादिकोंके भी उपदेशक!। श्रुति "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" त्वदे-

कप्रयोजन अतएव अन्यप्रयोजनशून्य मैं "ते नौमि" प्रयोजनरूप आपको नमस्कार करता हूं। क्योंकि आपही पुरुषार्थरूप नाम मुक्तप्राप्य हैं। श्रुति "ब्रह्मविदाप्नोति परम्, तमेवैवंवित्सार्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे" ॥ ८ ॥

अब औपनिषदोंके सिद्धान्तको कहते हैं—

ब्रह्मणो भवत आदिपूरुषा-
ज्जायते यत इदं रमेश्वरात् ॥
तन्नियामकतया तदात्मकं
विश्वमेवमखिलं प्रचक्षते ॥ ९ ॥

हे भगवन्! आदिपुरुष, लक्ष्मीपति, परब्रह्म आपसे इस जगत्की उत्पत्ति होती है, अतः आप इसके नियामक हैं। और चराचरविश्व तदात्मक (आपका स्वरूप) है यह श्रुतियां कहती हैं ॥ ९ ॥

"ब्रह्मणः" हे श्रीकृष्ण! आप स्वरूप और गुणशक्त्यादिकोंसे निरतिशय बृहत्तम वस्तु हैं। श्रुति "बृंहति बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म"। "आदिपूरुषात्" हे श्रीकृष्ण! आप क्षराक्षरपुरुषोंसे आदि हैं, अतः आदिपुरुष नाम पुरुषोत्तम हैं। श्रुति "प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः, क्षरात् परतः परः"। अथवा हे श्रीकृष्ण! आप सबके आदि नाम उपादान कारण हैं, अतः पुरुष अर्थात् परिपूर्ण हैं। अथवा पुरुष नाम हिरण्यगर्भके भी आदि हैं। श्रुति "पूर्वमेवाहमासं तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्"। "रमेश्वरात्" हे श्रीकृष्ण! आप लक्ष्मीके पति हैं। श्रुति "श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ"। अथवा "परेश्वरात्" इस पाठमें श्रीकृष्ण पर नाम परिच्छिन्न ऐश्वर्यवान् ईश्वरकल्प, ब्रह्मरुद्रादिकोंके भी ईश्वर हैं। श्रुति "तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमञ्च दैवतम्"। "यतो भवत इदं जायते (अतः) तन्नियामकतया अखिलमेव विश्वं तदात्मकं प्रचक्षते (श्रुतयः)" हे श्रीकृष्ण! पूर्वोक्तविशेषणविशिष्ट आपसे यह सद्रूप विश्व बीजसे अङ्कुरके सदृश उत्पन्न होता है। श्रुति "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"। इसीसे आप इस जगत्के नियामक हैं, और यह जगत् तदात्मक (स एव भवानेव आत्मा स्वरूपं यस्य) अर्थात् आपका स्वरूप है, अतः यह जगत् आपसे अभिन्नभी है, यह श्रुतियां कहती हैं—"ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्, सर्वं खल्विदं ब्रह्म"। भाव यह है कि जो वस्तु यदात्मक होती है वह उसके साथ सामानाधिकरण्यनिर्देशके योग्य है। जैसे पिण्ड और

जीव। जो वस्तु जिसके अधीन स्थितिप्रवृत्तिवाली होती है, वह उसके साथ सामानाधिकरण्यके योग्य है। यह व्याप्ति छान्दोग्योपनिषद्के प्राणेन्द्रियसंवादमें भी कही है। यथा—"न वै वाचो न चक्षूंषि न श्रोत्राणि न मनांसि, इत्याचक्षते, प्राण इत्येवाचक्षते, प्राण एवैतानि सर्वाणि भवति"। फलितार्थ यह है कि अखिल विश्वके आत्मा परब्रह्म श्रीवासुदेव हैं और जगत् ब्रह्मका आत्मीय उपादेय तथा नियम्य है। अतः जगत् भी ब्रह्मत्वसे निर्देशके योग्य है। एवं जगत् परतन्त्रसत्तावच्छिन्नस्वरूपहोनेसे भिन्न और तदात्मकत्वादिहेतुसे तदपृथक्सिद्ध है अतः अभिन्न भी है। इस प्रकार जगत्से 'भिन्नाभिन्न' ब्रह्म तत्त्वमस्यादि वाक्योंका शक्य होनेसे मुख्यार्थ है, यह उपनिषदोंका सिद्धान्त है॥ ९॥

अब श्रीभगवदवतारादिकी दिव्यता निरूपण करतेहुए स्तुति करते हैं—

जन्मकर्मगुणरूपयौवनं
दिव्यमेव कवयो वदन्ति ते॥
श्रौतवाद उपलभ्यते तथा
निर्विशेषचिति-मङ्गलालये॥ १०॥

हे श्रीकृष्ण! नारदादि महर्षिगण आपके जन्म-कर्म-गुण-रूप तथा यौवनको दिव्य कहते हैं। हे भगवन्! प्राकृतहेयविशेषरहित, चित्स्वरूप, समस्त मङ्गलोंके मन्दिर आपके जन्मादिका दिव्य होना नारदादिकोंकी उक्त्यनुसार वेदोंमें भी उपलब्ध होता है॥ १०॥

"कवयस्ते जन्म-कर्म-गुण-रूप-यौवनं दिव्यमेव वदन्ति" हे श्रीकृष्ण! कवि नाम नारदादि महर्षि आपके जन्म-श्रीरामकृष्णनृसिंहादिरूप अनेकाविर्भावों द्वारा अजहद्गुणशक्त्यादिसे प्रकट होना। कर्म-जगत्सृष्ट्यादि, साधुपरित्राण तथा असाधुनिग्रह, एवं गोवर्द्धनोद्धरणादिरूप। गुणज्ञानादि स्वरूपगुण तथा माधुर्य्यादि विग्रहगुण। रूप-द्विभुजचतुर्भुज-सहस्रशीर्षादि आकृतिविशेष। यौवन-युवत्वाद्यवस्था। इन सबोंको दिव्य कहते हैं। एवकार अयोगव्यवच्छेदार्थ कहे। अर्थात् श्रीकृष्णके जन्मादि दिव्य नहीं हैं सो नहीं? किन्तु दिव्य ही हैं। अथवा कवि नाम आप (स्वयं) ही अपने जन्मकर्मादि-

को दिव्य कहते हैं। श्रीमुखवाक्य—"जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः॥ पश्य मे पार्थ! रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः॥ नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतानि च"। "तथा श्रौतवाद उपलभ्यते" हे हरे! इसी प्रकार उपनिषदोंमें भी पूर्वोक्त आपके जन्मादिका दिव्य होना दीखता है। यद्वा 'त्वयि' के अध्याहारसे यह अर्थ होता है कि हे श्रीकृष्ण! कविकी उक्तिरूप निर्णयानुसार ही आपमें वेदवाद उपलब्ध होता है। "अजायमानो बहुधा व्यजायत" यह श्रुति जन्मके दिव्यत्वमें, "अथेनमाहुः सत्यकर्मेति, सत्यं ह्येवेदं विश्वमसौ सृजते, अथेनमाहुर्नित्यकर्मेति, नित्यं ह्येवासौ कुरुते" यह कर्मविषयक निर्णयमें, "तस्य वा एतस्य पुरुषस्य रूपं यथा महारजतं वासः, आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्, यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम्" इत्यादि रूपविषयमें, "यः सर्वज्ञः सर्ववित्, यस्य ज्ञानमयं तपः, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् बिभेति कुतश्च न, सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः, स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" इत्यादि गुणविषयक निर्णयमें, "गोपवेषमभ्रामं तरुणं, सर्वगन्धः सर्वरसः" इत्यादिश्रुतियां रूपवृत्ति-यौवनादिगुणोंमें प्रमाण हैं। अर्थात् पूर्वोक्त वेदवाक्य श्रीभगवान्के जन्मकर्मादिमें प्रमाण हैं। अब वेदका विशेषण कहते हैं,—"निर्विशेषचितिमङ्गलालये" हे श्रीकृष्ण! वेदमें भी प्राकृतविशेषरहित अत एव निर्विशेष आपके जन्मादिका चिति नाम संचय है, अतः आपके मङ्गलमय स्वरूपगुणादिकोंके प्रतिपादकताका आश्रय होनेसे वेदभी सर्वमङ्गलोंका आलय है। उक्तपादका वेदपक्षमें विशेषण कहकर अब श्रीकृष्णके पक्षमें विशेषण देते हैं—"निर्विशेषचिति" हे श्रीकृष्ण! आप समस्त प्राकृत हेयविशेषणोंसे रहित हैं अतः चित्स्वरूपहैं। श्रुति "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, य आत्माऽपहतपाप्मा, विजरो विमृत्युर्विशोकः"। "मङ्गलालये" हे श्रीकृष्ण! आप मङ्गल नाम निरतिशय आनन्दके मन्दिर हैं। श्रुति "आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् बिभेति कुतश्चन॥ १०॥

अब सब जीवोंके सेव्य भी श्री भगवान् ही हैं, यह कहते हुए स्तुति करते हैं—

नित्यमुक्तजननासुसेवितो
बद्धजीवदयया ऽक्षिगोचरः॥
देशकालगुणवस्तुतो बृहन्
बल्लवीप्रिय! भवानमायया॥ ११॥

हे वल्लवीप्रिय ! नित्य और मुक्तगणोंसे सुसेवित, देशकालादिपरिच्छेदशून्य, आप उन उन बद्ध जीवोंको मोचनकरनेकी इच्छारूपदयासे बद्धजीवोंको भी दर्शन देते हैं ॥ ११ ॥

"भवान् अमायया नित्यमुक्तजनतासुसेवितः" हे श्रीकृष्ण ! आप अमाया द्वारा (१)नित्य तथा (२)मुक्तगणोंसे निरन्तर सेवित हैं। अर्थात् नित्य और मुक्तगण मायाके आवरणसे रहित हैं, अतः निरन्तर भगवान्के समीप सेवामें रहते, और भगवद्दर्शनादि आनन्दका अनुभव करते हैं । श्रुति "सदा पश्यन्ति सूरयः" । अमायया बद्धजीवदययाऽक्षिगोचरः" हे श्रीकृष्ण ! आप मायासम्बन्धरहित बद्धजीवविषयक स्वसाधारणगुणरूप दयासे (३)बद्धोंके भी अक्षिगोचर होते हैं, अर्थात् श्रीकृष्ण अपनी निर्हेतुक कृपाकटाक्षसे चरमजन्मा मुमुक्षुको भी दर्शन देते हैं । अथवा श्रीकृष्ण अमाया नाम उन २ जीवोंको संसारसे मुक्तकरनेकी इच्छा [असौ मया मोचनीय इत्यादिकसङ्कल्परूपा] से शास्त्र और आचार्यद्वारा उपदिष्ट साधन सम्पन्न बद्धजीवोंपरभी अनुग्रह कर दर्शन दे, उनको संसारसे मुक्त करते हैं । इस पूर्वोक्त कथनसे यह भी सिद्ध होता है कि जिसको श्रीभगवान् का साक्षात् दर्शन होता है, वही इस संसारसे मुक्त होता है, अन्य नहीं । अवतारावस्थामें श्रीभगवान् योगमायासे समावृत हैं अतः सबलोगोंको भगवान्का साक्षात्कार होनेपर भी उनके मोक्ष न होनेमें कोई विरोध नहीं है। गीता "नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः" इससे ईश्वरमें वैषम्यकी कल्पना न करना, क्योंकि विषमता पुरुषस्वभावविशेष जीवमें ही रहती है, न कि परमात्मामें । अथवा अवतारावस्थामें श्रीभगवान्की इच्छा न होनेसे भी दर्शकोंकी मुक्ति नहीं होती है ।

---

(१) तीनों कालमें मायानिरूपित संसारचक्रमें भ्रमणरूपदुःखादिकोंके अनुभवसे रहित और सर्वदा भगवद्दर्शनानन्दानुभवयुक्तको नित्य कहते हैं ।

(२) श्रीभगवान्की कृपासे तत्साक्षात्कारद्वारा मायाके सम्बन्धसे रहित अतः भगवद्भावापत्तिमान् जीव मुक्त हैं ।

(३) अनादिकर्मप्रयुक्तमायाके सम्बन्धसे प्रायदेवतिर्यगादियोनियोंद्वारा चक्रके तुल्य भ्रमिसम्पन्न जीव बद्ध है ।

श्रुति "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः"। देशकालगुणवस्तुतो बृहन्" हे श्री कृष्ण! आप देश-काल-गुण और वस्तुओंसे तदात्मत्व, तदाधारत्व, तद्व्यापकत्वादिहेतुद्वारा बृहत् नाम अधिकतम हैं। अर्थात् श्रीकृष्ण देशकालादिपरिच्छेदशून्य हैं। "हे वल्लवीप्रिय!" हे नन्दगोपव्रजस्त्रियोंके निरतिशयप्रीतिविषय श्रीपुरुषोत्तम! आपही सर्वजीवनिकायकी गति हैं॥ ११॥

अब मुमुक्षुओंके लिये अर्चिरादिमार्गको दिखाते हुए स्तुति करते हैं—

भाति चातिनिरुपाधिपद्धति-
र्भक्तकामपरिपूरको विभुः॥
व्यापकोऽपि परिच्छिन्नहृद्गतो-
ऽचिन्त्यशक्तिरवबोधवारिधेः॥ १२॥

भक्तोंकी इच्छाओंके परिपूरक, विभु, अचिन्त्यशक्ति, व्यापक होकर भी हृद्गतहोनेसे परिच्छिन्न, अतः अपरोक्षज्ञानसागर श्रीकृष्णके परमधामका मार्ग शास्त्रमें प्रकाशित है (सो कहते हैं)॥ १२॥

"अवबोधवारिधेरतिनिरुपाधिपद्धतिः (शास्त्रे) भाति" सर्वदेशकालविषयकापरोक्षज्ञानसागर श्रीकृष्णके प्रकृतिसम्बन्धरहित परमधामकी पद्धति (अर्चिरादिमार्ग) शास्त्रमें प्रकाशित नाम दिखलाई देता है। (पद्भ्यां हन्यतेऽत्रेति पद्धतिः, हन् हिंसागत्योरिति धातोर्गमनमार्गः) अर्चिरादिमार्गद्वारा गमनकरनेवाला जीव प्राणके उत्क्रमणसमयमें हार्दानुग्रहसे परमात्मप्रकाशित सुषुम्णाख्य मार्गमें प्रवेश करता हुआ ब्रह्मरन्ध्रसे निकलकर सूर्य्यकी रश्मियोंको आरोहण करता है। और उस मार्गसे प्रथम वह्नि—ततः दिवस-सितपक्ष-ततः षण्मास इत्यादि क्रमसे जाता हुआ प्राकृतमण्डलको भेदनकर प्रकृति और विष्णुपदकी सीमाको विभाग करनेवाली सरिद्वर विरजा नदीको प्राप्त होता है। और वहां अपनेको लेनेके लिये आये हुए अमानव पुरुषोंको देखता है। पुनः उस विरजाके तीरमें प्रकृतिका कार्य सूक्ष्मशरीरको अपने कारणमें त्यागकरके अमानवोंके दर्शन और करस्पर्शोंसे उनके सहित संकल्पमात्रसे विरजानदीको तरता है। पुनः परम धामको प्राप्त हो दिव्य अतः अप्राकृत और अनादिसिद्ध एवं अमानवों द्वारा लाया हुआ वि-

ग्रह और ग्राह्य अलङ्कारोंसे अलंकृत हो परमपदमें प्रवेशकर ब्रह्मभाव अर्थात् भगवद्भावापत्तिको प्राप्त होता है। श्रुति "ते अर्चिषमभिसम्भवन्ति, अर्चिषोऽहः, अह आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षड्दङ्देति तान्मासेभ्यः संवत्सरम्" इत्यादि। कोई २ कहते हैं कि विद्वान्की अर्चिरादि गति हो? किन्तु उसका प्राप्य हिरण्यगर्भोक्त कार्य ब्रह्म है, परब्रह्म नहीं। क्योंकि ब्रह्मविशिष्टदेशसे परिच्छिन्न कार्य ब्रह्मही इस गतिका प्राप्य हो सकता है, सर्वव्यापी पूर्ण नहीं। प्रमाणश्रुति "ब्रह्मलोकान् गमयति, प्रजापतेः सभां वेश्म प्रतिपद्यते"। उनका यह कहना युक्त नहीं हैं, क्योंकि उक्त गतिका प्राप्य भी वही परब्रह्म है। श्रुति "परं ज्योतिरुपसम्पद्य" इस श्रुतिने परब्रह्मको ही प्राप्य कहा। श्रुति "न च पुनरावर्त्तते" और उक्त गतिवालेकी अपुनरावृत्ति भी श्रुति ने स्पष्ट कही है। किञ्च "यथोपायप्राप्यत्वात् फलस्य" यह न्याय और "यथाकतुरस्मिंल्लोके भवति तथेतः प्रेत्य भवति" इस श्रुतिसे सिद्ध होता है कि परब्रह्मोपासकको इतरप्राप्ति नहीं हो सकती है। एवं अर्चिरादिमार्गसे जाने वाले विद्वान्को "ब्रह्मलोकमतिक्रम्य तेन याति परां गतिम्" इस श्रुतिने ब्रह्मलोकको अतिक्रमण करना भी स्पष्ट कहा है। और कार्यब्रह्मका सत्यलोक प्राकृत है, अतः पुनरावृत्ति युक्त है। गीतामें श्रीभगवान्ने भी कहा है कि "आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन!" ब्रह्मलोकपर्य्यन्त सबलोकों से जीवकी पुनरावृत्ति होती है और "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम" इस श्रीमुखवाक्य से भी सिद्ध है कि श्रीकृष्णके परमधाम (विष्णुपद) को प्राप्त होनेवाला फिर इस संसार में नहीं आता है। इन पूर्वोक्त हेतुओंसे शास्त्रतत्त्वानभिज्ञोंकी उक्त शङ्का ठीक नहीं है। यद्वा "अवबोधवारिधे!" ऐसा सम्बोधन पाठ हो तो 'तव' का अध्याहार करनेसे यह अर्थ होगा कि हे समस्तज्ञानसागर! अत्यन्तोपाध्यसंस्पृष्टमाहात्म्य आपकी पद्धति (पद्यते इति पदं स्वरूपं तस्य हतिः-हन्यते गम्यते ज्ञायते प्राप्यते वाऽनयेति पद्धतिः) नाम स्वरूपगुणादिविषयज्ञानप्राप्तिमें कर्म-ज्ञान-भक्त्यादिरूप साधनसम्पत्ति शास्त्रमें दिखलाई देती है। "भक्तकामपरिपूरकः" हे श्रीकृष्ण! आप आर्त्त-जिज्ञासु-अर्थार्थी-और ज्ञानी भक्तोंके अर्थ-धर्म-काम-मोक्षरूप-कामोंको परिपूर्ण करनेवाले हैं। श्रुति "स वा एष महानज आत्मा अन्नदो वसुदान एष आनन्दयाति य

आत्मदा बलदा रातिर्धातुः परायणम्"। "विभुः" हे श्रीकृष्ण! आप सर्वव्यापी हैं, अतः सर्वनियन्ता भी हैं। श्रुति "सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा"। यदि सर्वान्तर है तो तद्गतपरिच्छेदयुक्त भी होंगे? इस शंकाका उत्तर देते हैं—"व्यापकोऽपि परिच्छिन्नहृद्गतः" हे श्रीकृष्ण! आप परिच्छिन्न हृदयमें वर्त्तमान होकरभी व्यापक अर्थात् परिच्छेदहीन हैं। श्रुति "अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्ये आत्मनि तिष्ठति, ईशानो भूतभव्यस्य, एष मे आत्माऽन्तर्हृदये अणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा एष आत्माऽन्तर्हृदये ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान् दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः"। परस्परविरोधी अणीयस्त्व और ज्यायस्त्व इन दोनों का एकत्र अवस्थान कैसे हो सकता है, इस शंकाका उत्तर देते हुए कहते हैं—"अचिन्त्यशक्तिः" हे श्रीकृष्ण! आप अचिन्त्यशक्तिमान् हैं, अतः परस्परविरोधी दोनोंके एकत्र अवस्थान में कोई विरोध नहीं है। श्रुति "पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते" ॥ १२ ॥

अब उक्त पङ्क्तिके प्राप्य फलका निरूपण करते हैं-

आत्मभावमनुभूतिरूपिणो
ये वदन्ति तव रूपरूपिणः ॥
ब्रह्मभावपरमात्मभावतः
सत्यमेव सुखबोधरूपिणः ॥ १३ ॥

हे श्रीकृष्ण! "परं ज्योतिरुपसम्पद्य" इत्यादि मन्त्र अनुभूतिरूपी, नामरूपरूपणशील, सुख और बोधरूपी आप (श्रीवासुदेव) के आत्मभावरूप मोक्षको कहते हैं और जो मन्त्र ब्रह्मभावसे आत्मभावमोक्षको उत्कृष्ट कहते हैं, वह भी सत्य है ॥ १३ ॥

"ये (मन्त्राः) अनुभूतिरूपिणस्तवात्मभावं वदन्ति" जो "परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" इत्यादिक मन्त्र अनुभूतिरूपी (ज्ञानस्वरूप) आप श्रीवासुदेवके आत्मभावरूप मोक्ष लक्षणको कहते हैं।"(ये मन्त्राः) ब्रह्मभावपरमात्मभावतो (मोक्षमाहुः) तत्सत्यमेव"। और "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति, ब्रह्मविदाप्नोति परम्, तन्मेहिमानमिति वीतशोकः" इत्यादि मन्त्र (१)

(१) ब्रह्मभावात्परमुत्कृष्टम्, आत्मभावत आत्मभावम् इति। ब्रह्मणो भावः सार्वज्ञ्यादिधर्मकदम्बस्तस्मादप्युत्कृष्टं ब्रह्मस्वरूपं तदात्मकत्वमात्मभावमित्यर्थः। सार्वज्ञ्याद्यनुभवापत्तिपूर्वकतदात्मकत्वानुभूतिरिति तात्पर्यार्थः।

ब्रह्मभावसे ब्रह्मात्मभावरूप मोक्षको श्रेष्ठ कहते हैं, यह सत्य है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मभावजो ब्रह्मके सार्वज्ञ्यादि धर्मैकदम्य, उससे ब्रह्मात्मकत्वमोक्ष श्रेष्ठ है। क्योंकि इस मोक्षमें सार्वज्ञ्यादि अनुभवप्राप्तिके सहित मुक्तको ब्रह्मात्मकत्वका भी अनुभव होता है। सिद्धान्तसूत्रमें भी कहा है कि "एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधं बादरायणः" पूर्वोक्त ब्रह्मभाव अर्थात् सार्वज्ञ्यादि विषयक अनुभवसे अपहतपाप्मत्वादियुक्त विज्ञानरूप स्वस्वरूपके आविर्भावसे अविरोध मोक्षस्वरूपको श्रीभगवान् बादरायणमुनि मानते हैं, ऐसा माननेसे किसीभी वाक्यसे विरोध न होगा। और यहां "परं ज्योतिरुपसम्पद्य" इस वाक्यके विरोधकी शंका भी न करनी, क्योंकि वह श्रुति भी पूर्वोक्तार्थके तुल्य ही है। तथा "स एव ज्येतिषां ज्योतिः" इत्यादि श्रुत्यन्तरसे परज्योतिःशब्दाभिधेय परब्रह्मभूत श्रीपुरुषोत्तमको प्राप्त होकर (साक्षात् अनुभवकर) स्वरूपसे नाम ब्रह्मस्वरूपगुणादिविषयक प्रत्यक्षानुभूतिके आश्रयरूप अनुभवितृरूपसे निष्पन्न होता है, अर्थात् अनवच्छिन्न भगवदनुभवसे स्थित होता है। क्योंकि ब्रह्मभावपदवाच्य भगवद्विषयक निरन्तरानुभव का यहां भाव है। "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" इस श्रुतिने जो मुक्तको 'साम्य' विधान किया है उससे भी अविरोध है। क्योंकि इस सिद्धान्तमें भी मुक्तको स्वरूप और गुणादिसे ब्रह्मकी समता है। तथा ज्ञानानन्दस्वरूप होनेसे स्वरूपका और अपरिच्छिन्न ज्ञानधर्मयुक्त होनेसे गुणका सादृश्य है। "तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वं सादृश्यम्" उससे भिन्नहोकर उसके बहुतसे धर्मोंसे युक्त होना ही सादृश्यका लक्षण है। इसीको साम्य भी कहते हैं। इस सिद्धान्तमें भी नियन्तृत्व एवं स्वातन्त्र्यरहित होनेसे मुक्त जीव ब्रह्मसे भिन्न, और सार्वज्ञ्यादि तथा अपहतपाप्मत्वादि ब्रह्मके बहुतधर्मोंसे युक्त होनेसे ब्रह्मके सदृश है। अतः उक्तलक्षणका समन्वय है। "सर्वं ह पश्यः पश्यति" यह श्रुति मुक्तको सर्वज्ञताका विधान करती है। अतः सादृश्य और "जगद्व्यापारवर्जम्" यह सिद्धान्तसूत्र भेदका विधान करता है, इससे उक्त मुक्तिही शास्त्रसम्मत है। इस सिद्धान्तमें "स स्वराड् भवति" इस श्रुतिके विरोधकी भी शंका न करना। क्योंकि मुक्तको भी ब्रह्मादिवन्दनीयरूप स्वाराज्यकी समता है। एवं "नारायणं सायुज्यमाप्नोति" इस सायुज्यश्रुतिके विरोधकी भी कल्पना नहीं क-

रना। क्योंकि "सह युज्यते इति सयुक्, सयुजो भावः सायुज्यं, नित्यसम्बन्ध इत्यर्थः" परमात्माके साथ नित्यसम्बन्धहोनेको ही सायुज्य कहते हैं। इन पूर्वोक्त कथनोंसे सिद्ध है कि भगवान् श्रीवासुदेवके साथ नित्यसम्बन्धभावापत्तिरूप मोक्ष ही शास्त्र सिद्ध है। "रूपरूपिणः" हे श्रीकृष्ण! नाम और रूपव्याकरणशील भी आप ही हैं। श्रुति "बहु स्यां प्रजायेय, नामरूपे व्याकरवाणि"। यद्वा श्रीकृष्ण अजहदचिन्त्यानन्तशक्तिगुणादिसम्पन्नावतार मत्स्यकूर्मादिरूपोंको धारणकरनेवाले हैं। श्रुति "अजायमानो बहुधा व्यजायत"। यद्वा हे श्रीकृष्ण! सर्वलोकप्रकाशक होनेसे प्रसिद्ध आदित्यादिरूपोंका भी प्रकाशक आपका रूप है। श्रुति "येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः, यस्य भासा सर्वमिदं विभाति" गीता यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्"। "सुखबोधरूपिणः" हे श्रीकृष्ण! आप सुख और बोधरूप हैं। श्रुति "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" ॥ १३ ॥

अब सर्वशास्त्रके विषय भी श्रीकृष्ण ही हैं, यह दिखाते हुए स्तुति करते हैं—

त्वामखण्डरसमात्मवल्लभं
वेदवाक्यमत एव बोधयत्॥
पर्य्यवस्यति परेऽखिलात्मनि
त्वय्यनन्त! सुखरूप! शोधयत्॥ १४॥

हे अनन्त! हे सुखरूप! श्रीकृष्ण! आप अपरिच्छिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप और जीवोंके अत्यन्तप्रिय हैं, अतः आपको अतिशयसाम्यरहितज्ञापनकरते तथा पुरुषोत्तम होना प्रकटकरते हुए समस्तवेदवाक्योंका भी पर्य्यवसान [समन्वय] परब्रह्म और चराचरके अन्तरात्मा आपमें ही होता है॥ १४॥

"त्वां बोधयत् वेदवाक्यं त्वय्येव पर्य्यवस्यति" हे श्रीकृष्ण! आपको अतिशयसाम्यरहित ज्ञापनकरते हुए समस्तवेदवाक्योंका समन्वय भी आपमें ही होता है। श्रुति "सर्वे वेदा यत्रैकीभवन्ति" गीता "वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः" सूत्र "तु समन्वयात्"। "अखण्डरसम्" हे श्रीकृष्ण! आप अखण्डरस नाम अपरिच्छिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप हैं। अर्थात् "रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" इस श्रुत्युक्त रस नाम

आनन्दरूपभी आपही हैं, आपको प्राप्तकर जीव आनन्दी होता है। "आत्मवल्लभम्" हे श्रीकृष्ण! आप जीवोंके अन्तरात्मा हैं, अतः जीवात्माओंकेभी प्रेष्ठ हैं। क्योंकि आत्मा ही समस्तोंको प्रिय होता है। "एष सर्वभूतान्तरात्मा, आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति"। "शोधयत्" हे श्रीकृष्ण! वेदवाक्य क्षेत्र और क्षेत्रज्ञोंसे विभागकर आपका पुरुषोत्तमत्व प्रकट करते हैं। अर्थात् श्रीकृष्ण क्षेत्र और क्षेत्रज्ञोंके पति हैं, अतः वेदवाक्य उनको पुरुषोत्तम कहते हैं। श्रुति "प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः, अक्षरात्परतः परः"। यद्वा "अत एव शोधयत्"। हे श्रीकृष्ण! वेदवाक्य प्रधानकालपरमाण्वादिकारणवादका निराकरणकर आपको ही जगत्कारण होना प्रतिपादन करते हैं। श्रुति "यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्ममुक्तान्यधितिष्ठत्येकः, स कारणं कारणाधिपाधिपः"। यद्वा "अत एव शोधयत् त्वां बोधयत" हे श्रीकृष्ण! समस्तवेदवाक्य पूर्वोक्तकारणद्वारा देहादिवर्गसे प्रत्यगात्मा (जीव) को विलक्षण (भिन्न) दिखाते हुए भी तादात्म्यसम्बन्ध होनेसे प्रत्यगात्माका तदात्मक (ब्रह्मात्मक) होना आपन करते हैं। श्रुति "एतस्मान्मनोमयादन्य आत्मा विज्ञानमयः, ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्, स आत्मा तत्त्वमसि"। "अखिलात्मनि" हे श्रीकृष्ण! आप सबके आत्मा हैं। श्रुति "सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा"। "परे" हे श्रीकृष्ण! आप समस्त देवादिकोंसे पर हैं—अतः परमात्मा हैं। गीता "मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय!"। "अनन्त! सुखरूप!" हे अनन्त! अर्थात् देशकालादिपरिच्छेदशून्य! हे सुखरूप! आनन्दमूर्ते!। इस सम्बोधनका तात्पर्य यह है कि अनन्त एवं आनन्दमूर्त्ति भी श्रीकृष्ण ही हैं। अतः "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इत्यादिश्रुत्युक्त लक्षणका समन्वय भी श्रीकृष्णमें ही होता है॥ १४॥

अब इतरदेवोपासककी निन्दा तथा भगवद्भक्तिको दृढ करते हुए स्तुति करते हैं—

वेदविद्भिरभिधीयते पशु-
र्योऽन्यदेवसमुपासको हि सः।
त्वामुपास्य बहवोऽमृता वृताः
पूर्णकाममसृतं निरंहसः॥ १५॥

हे श्रीकृष्ण! जो पुरुष आपको छोडकर अन्यदेवोंकी उपासना

करते हैं, वे निश्चय पशु हैं । यह वेदज्ञ श्रीनारदादिकोंका मत है । पूर्णकाम अमृत अर्थात् भूमदेव आप श्रीमुकुन्दका उपासनकरके बहुतसे हीनदोषपुरुष भगवद्भावरूप मुक्तिको प्राप्त हुए हैं ॥ १५ ॥

"योऽन्यदेवसमुपासकः स हि वेदविद्भिः पशुरभिधीयते" जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्णको छोडकर ब्रह्मरुद्रादिरूप अन्यदेवोंका उपासन करता है, उसको वेदोंके जनानेवाले सनकादि नारद-व्यासादि पशु अर्थात् परतत्त्वविषयकज्ञानरहित कहते हैं । क्योंकि "ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः" यह पशुका लक्षण उसमें घटता है अर्थात् ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिदेव परजन्य, अतः परतन्त्रस्थित्यादियुक्त और परोपासनसे लब्ध परिच्छिन्न ऐश्वर्यवाले तथा परदत्तभागभुक् परानुशिष्ट एवं कर्म्मपरतन्त्र हैं, और श्रीकृष्ण स्वतन्त्र तथा उन कर्म्मतन्त्र देवोंके जनक हैं, अतः परात्पर श्रीकृष्णको छोडकर जो उन कर्म्मतन्त्र देवोंकी उपासना करते हैं वे परतत्त्वज्ञानशून्य होनेसे पशु हैं । यह वेदोंके ज्ञाता श्रीनारदादि कहते हैं । तथा श्रुति "नारायणाद् ब्रह्मा जायते, नारायणाद्रुद्रः, अथ यो वै स्वां देवतामतियजति परस्यां वै देवतायां च्यवते न स परां प्राप्नोति पापीयान् भवति । तमेवैकं विजानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ" गीता "अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् । देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि" विष्णुपुराण "अशुद्धास्ते समस्तास्तु देवाद्याः कर्मयोनयः । प्यावतेऽक्षयं योऽन्यं विष्णुलिङ्गं समाश्रितः । कल्पकोटिशतेनापि न गतिस्तस्य विद्यते" । अब फलसहित सुकृतिपुरुषोंके उपासनको निर्धारण करते हुए कहते हैं—"त्यामुपास्य निरंहसो बहवोऽमृता कृताः" । "येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् । ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः" इत्यादि भगवदुक्तन्यायसे जो भगवदीयोपासनके प्रतिबन्धकरूपपापहीन सुकृती पुरुष हैं, वे संसारके हेतुभूत, परिच्छिन्नफलक अन्यदेवोपासनको दूरसे ही त्यागकरके जगज्जन्मादिहेतु, शास्त्रयोनि, योगिध्येयपदाम्बुज, ब्रह्मेशादिकोंके किरीटोंसे वन्दितपादपीठ, तर्कागोचरमाहात्म्य, मुक्तोपसृप्य, विष्णुनारायणादिशब्दाभिधेय आप श्रीमुकुन्द भगवान्की उपासनाकरके अमृत नाम पूर्वोक्त भगवद्भावापत्तिलक्षणमोक्षको प्राप्त हुए हैं । श्रुति "ब्रह्मविदाप्नोति परम्, निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति, तमेवं विद्वानमृत इह भवति" गीता "बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः । इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः । सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च" । अब उपास्यके विशेषणको कहते हैं—"पूर्णकामम्" हे श्रीकृष्ण !

आप पूर्ण हैं अतः मुमुक्षुओंको वरणीय है। श्रुति "पूर्णमदः पूर्णमिदम्" वहा "पूर्णाः कामा अस्मात्" इस विग्रहसे यह अर्थ होता है कि श्रीकृष्ण ही सर्वपुरुषार्थोंके देनेवाले हैं। श्रुति "य आत्मदा बलदा यस्य विश्वमुपासते प्रशिषंतुः परायणम्"। वहा "पूर्णा कामा यस्य सः" ऐसा विग्रह करनेसे श्रीकृष्ण पूर्णकाम हैं, यह अर्थ हुआ। श्रुति "सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः तस्मिन् कामाः समाहिताः"। "अमृतम्" हे श्रीकृष्ण भूमविद्याके विषय भी आपही हैं। अर्थात् श्रीकृष्ण भूमदेव हैं। श्रुति "यो वै भूमा तदमृतं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः। पूर्वोक्त कथन से उक्त लक्षण आप श्रीवासुदेव में ही वेदान्तोंका समन्वय हैं और त्वद्विषयक (वासुदेवविषयक) उक्तलक्षणा परा विद्या स्वतन्त्ररूपसे मोक्षहेतु है, यह सिद्ध हुआ ॥ १५ ॥

अथ श्रीभगवच्चरणारविन्दविमुखजनोंकी निन्दा करतेहुए श्रीकृष्णकी स्तुति करते हैं—

नेष्टसिद्धिरपि च व्यवस्थया
नादृतेशचरणा यतो हरे ! ॥
युक्तिरेव शिथिला हि तन्मते
सत्तयाऽपि न हि मानदो विभुः ॥ १६ ॥

हे हरे ! आपके चरणारविन्दोंसे विमुखपुरुषोंकी श्रवणादिसाधनप्रक्रियोंसे भी इष्टसिद्धि (मुक्ति) एवं भोगसिद्धि भी नहीं होती है। और उन बहिर्मुखोंके मतमें जो२ विवर्तवादादिरूप युक्तिजाल हैं, वे भी शास्त्रप्रमाणहीन होनेसे दुर्बल हैं। एवं उन मूढ़ोंकी कल्पित त्रिविधसत्ताद्वारा भी उनके लिये सर्वव्यापी आप सन्मानहेतु नहीं है॥१६॥

"हे हरे ! यतो नादृतेशचरणा (अतस्तेषाम्) व्यवस्थयाऽपि इष्टसिद्धिर्न च" हे स्वभक्तपापहारिन् ! आपके चरणारविन्दोंका अनादरकरनेवाले पुरुषोंकी अथात अतः कपोलकल्पित श्रवणादिसाधनप्रक्रियारूप व्यवस्थासे भी संसारनिवृत्तिरूप श्रेयोलक्षणा सिद्धि (मुक्ति) तथा चकारसे भोगसिद्धि भी नहीं है। क्योंकि साधनमात्र आप (श्रीकृष्ण) के अनुग्रहसापेक्ष हैं, और अनुग्रह आपके चरणारविन्दोंकी भक्तिके सापेक्ष है। अतः आपके चरणारविन्दविमुखजनोंके सर्वसाधन अनुग्रहशून्यहोनेसे अकिञ्चित्कर अर्थात् व्यर्थ हैं। श्रुति "शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विदुः, नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन, यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-

स्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वामिति, तमकतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्" । "युक्तिरेव शिथिला हि तन्मते" उन परतत्त्वपराङ्मुखोंके मत (निर्णय) में श्रुतिहीन विवर्त्तवादादि युक्तियां शिथिल नाम शास्त्रप्रतिकूल होनेसे सर्वथा कुतर्करूप हैं । अर्थात् सच्छास्त्रविरुद्धहोनेसे वे युक्तियां मन्द हैं । "सत्तयाऽपि विभुः (भवान् तेभ्यो) मानदो न (भवति) हि" हे श्रीकृष्ण ! उन अवैदिक और बहिर्मुखकल्पित पारमार्थिकी व्यावहारिकी प्रतिभासिकी इन त्रिविधसत्ताद्वारा भी उनके लिये सर्वव्यापी आप निश्चय सन्मानहेतु नहीं हैं। वास्तवमें तो सत्ता दो प्रकारकी है, एक स्वतन्त्र और दूसरी परतन्त्र । तिनमें स्वतन्त्रसत्ताके आश्रय नियन्ता परमात्मा श्रीकृष्ण हैं और परतन्त्रसत्ताके आश्रय नियम्यवर्ग-जीव तथा प्रकृति हैं ॥ १६ ॥

अब श्रीभगवद्धामका वर्णन करते हुए स्तुति करते हैं—

पारशून्य-परधाम तेऽद्भुतं
चिद्घनं जयति लोकमूर्द्धनि ॥
व्यापकं च परिखा सरिद्वरा-
ऽचिन्त्यशक्ति नवमङ्गलध्वनि ॥ १७ ॥

हे श्रीकृष्ण ! आपका परधाम वहाँके निवासियोंको आश्चर्यावह, प्रकाशानन्दमूर्त्ति, व्यापक, अचिन्त्यशक्ति, नवमङ्गलध्वनि और विरजानदीकी परिखायुक्त तथा आधिक्यशून्य है, अतः सर्वोत्कर्षरूपसे सर्वोपरि वर्त्तमान है ॥ १७ ॥

"ते पारशून्यपरधाम लोकमूर्द्धनि जयति" हे श्रीकृष्ण ! आपका आधिक्यशून्य परधाम (निवासस्थान—विष्णुपद-परमव्योम-वैकुण्ठादिलोक) (१)वेदान्तभागमें स्वोत्कर्षको प्रगट करते हुए प्रकाशित है । यद्वा हे पारशून्य ! ते परधाम लोकमूर्द्धनि जयति" हे त्रिविधपरिच्छेदशून्य ! श्रीकृष्ण! आपका परधाम सर्वोत्कर्षरूपसे सर्वोपरि वर्त्तमान है । "अद्भुतम्" हे श्रीकृष्ण ! आपके समीपमें निवासकरनेवाले नित्यमुक्तादि द्रष्टाओं को अपूर्वहोनेसे आपका परधाम आश्चर्यावह अर्थात् प्रतिक्षण नये

---

(१) लोक्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या लोकशब्दः शास्त्रपरः, तस्य मूर्धा वेदान्तभागः तस्मिन् तत्प्रतिपाद्यतया जयति स्वोत्कर्षमाविष्कुर्वन् प्रकाशते ।

नये आनन्दोंका देनेवाला है। "निवनम्" हे श्रीकृष्ण! आपका यह परधाम प्रकाशानन्दमूर्त्तिहोनेसे समस्त प्राकृतसम्बन्धोंसे रहित है। यदि मूर्त्ति है तो परिच्छिन्न भी होगा? इस आशंकाका उत्तर देते हुए कहते हैं—"व्यापकम्" हे श्रीकृष्ण! चकारसे परिच्छिन्नके तुल्य अवभासमान होने (दिखलाई देने) परभी आपका परधाम आपके विश्वरूपके सदृश परिच्छेदशून्यहोनेसे व्यापक है। "परिखा सरिद्वरा" हे श्रीकृष्ण! सरिद्वर विरजा नदी आपके परधाम की परिखा (सीमा) है। "अचिन्त्यशक्ति" हे श्रीकृष्ण! आपका परधाम भी आपके तुल्य सीमापरिच्छेदशून्यशक्तियुक्त है। अर्थात् विष्णुपद परिच्छिन्नके सदृश दिखलाई देनेपरभी अचिन्त्यशक्तियुक्त है, अतः उसके व्यापक होनेमें कोई विरोध नहीं है। "नवमङ्गलध्वनि" हे श्रीकृष्ण! उस परधाम में "जितं ते पुण्डरीकाक्ष" इत्यादि आपके स्वरूपगुणादिविषयक स्तोत्र-पाठात्मक अथवा सामगानादिरूपमङ्गलात्मक ध्वनियां होती हैं। इसी परधामको-ब्रह्मलोक-परमपद-विष्णुपद-वैकुण्ठ-परमव्योम-परलोक भी कहते हैं। तथा श्रुति—"यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यते, एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम्। दृष्ट्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसम्भवामि, स खल्वेवं वर्त्तयन् यावदायुर्ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते, न च पुनरावर्त्तते, विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः। सोऽध्वनः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्। तद्विष्णोः परमम्पदं सदा पश्यन्ति सूरयः"। एवं छान्दोग्य में भी इसी पर धामको भगवन्महिमारूप होना कहा है। यथा "स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति? स्वमहिम्नीति, दिव्यब्रह्मपुरे ह्येषः परमः प्रतिष्ठित इति। एष आत्मलोक इति, यत्तत्सूक्ष्मं परमं वेदितव्यं नित्यं पदं वैष्णवमामनन्ति"। भारतमें भी इसका वर्णन है। यथा "योगसिद्धा महात्मानस्तमो मोहविवर्जिताः। तत्र गत्वा पुनर्नेमं लोकमायान्ति भारत!। स्थानमेतन्महाराज! ध्रुवमक्षयमव्ययम्। ईश्वरस्य सदा तत्तत्प्रमाणञ्च युधिष्ठिर" इत्यादि पूर्वोक्त प्रमाणोंसे वह परधाम सप्त-लोकों से भिन्न, देवाद्यगोचर, तेजोमय तथा सूर्य और अग्निकी दीप्ति से प्रकाशनानहैं, स्वप्रकाशस्वरूप, देवादिकोंको दुष्प्रेक्ष्य एवं तमो-मोहादिरहित और योगादिसाधनसिद्ध परमयोगियोंका गम्य, परि-णामक्षयादिप्राकृतविकारहीन, अतः नित्य-अक्षय-अव्यय और प्रकृति से पर तथा श्रीपुरुषोत्तमाधिष्ठित है, यह सिद्ध हुआ। इससे विपरीत प्राकृतधर्मयुक्त अतः प्रकृतिका कार्य प्राकृत ब्रह्माण्डके मध्यवर्त्ति ब्रह्म-

लोकादिकोंमें पूर्वोक्त श्रुतिस्मृतिनिर्णीत अध्वपारत्वादि अप्राकृतलिङ्ग-युक्त विष्णुपदका समन्वय नहीं हो सकता है। क्योंकि प्राकृतलोकमात्र नाशवान् होने से पुनरावृत्तियुक्त हैं, और केवल भगवद्धाम ही पुनरावृत्तिरहित है। यह बात स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कही है। यथा "आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्জ্জুন!। यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम" ॥ १७ ॥

अब स्वाभीष्टपुरुषार्थसाधनोंमें भक्तिको स्वीकार करते हुए स्तुति करते हैं—

सत्प्रसङ्गबललभ्यभक्तितो
लभ्य एव रसमूर्त्तिमान् भवान्॥
सन्मुखाननु भवन्ति ये न ते
ते नियन्ति निरयान्विपद्गणान्॥ १८॥

हे श्रीकृष्ण! सत्पुरुषोंके प्रसङ्गरूपबलसे प्राप्त हुई भक्ति द्वारा परिपूर्णानन्दरूप मूर्त्तिमान् आप अवश्य लभ्य होते हैं। हे श्रीकृष्ण! जो पुरुष आपके अनन्याश्रित सत्पुरुषोंके अनुयायी नहीं होते हैं, वे विपत्तियोंके समूहयुक्त नरकोंकी यातनायें भोगते हैं॥ १८॥

"सत्प्रसङ्गबललभ्यभक्तितो लभ्य एव भवान्" हे श्रीकृष्ण! "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां, तेषामेकान्तिनः श्रेष्ठा ये चैवान्यदेवताः" इत्यादि श्रीमुखस्वाध्य-परम-ज्ञानवैराग्यादिसम्पन्न, कारुण्यवात्सल्यादिभूषित, और श्रीमुकुन्दसे अन्य साधनप्रयोजन सम्बन्धरहित तथा श्रीभगवत्प्रसादकी इच्छासे सर्वपुरुषार्थ और उसके साधनोंको तृणवत् माननेवाले गुरुभक्त एवं एकनिष्किञ्चनता ही जिनका द्रव्य है ऐसे लक्षणसम्पन्न सत्पुरुषोंकी श्रद्धा-विश्वास-आर्জব-प्रणिपात-परिप्रश्नादिनिर्मायिक सेवा-पुरःसर अत्यन्त सङ्गरूप *बलसे प्राप्त हुई भक्ति द्वारा ही स्वभावतोऽपास्त-समस्तदोष, निखिलज्ञानैश्वर्यादि तथा वात्सल्य-कारुण्य-तितिक्षा-क्षमा-आर्জব-स्वाम्यादि अनन्त स्वाभाविक कल्याणगुणार्णव वासु-देव रमानिवास आप अधिकरूपसे अवश्य लभ्य हैं। "नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया। शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा। भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्জ্জুन!। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप!" ये अन्वय-

* भगवान्के कृपापात्र होनेसे भगवत्प्रसादके अभिमानरूप बल।

व्यतिरेकगर्भितगीतावाक्य भी पूर्वोक्त कथनमें प्रमाण है। अतः भक्ति-की प्राप्तिमें सत्सङ्ग भी अन्तरङ्गोपाय है, यह निर्णय हुआ। "रस मूर्तिमान्" हे श्रीकृष्ण! आप परिपूर्णानन्दरूपमूर्ति हैं। अतः अन्य समस्त पुरुषार्थ इसी परिपूर्णानन्दके लेशमात्र हैं, इससे श्रीकृष्णकी प्राप्तिमें ही सर्वपुरुषार्थोंका अन्तर्भाव है यह सिद्ध हुआ। श्रुति "रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति, एष ह्येवानन्दयाति। एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति"। उक्त कथनसे श्रीभगवान्को मायिकविग्रह माननेवालोंका पक्ष भी निरस्त हुआ। क्योंकि "यदात्मिको भगवांस्तदात्मिका व्यक्तिः" इस श्रुतिने भगवत्के विग्रहको भी स्वरूपके तुल्य कहा है। तथा "मतुप्" प्रत्ययके प्रयोगसे स्वरूप और विग्रहको अभिन्न माननेवालोंके पक्षका भी स्वयं श्रुतिने अनादर किया है। "ये सम्मुखाननु न भवन्ति ते विपद्यन्ते म्रियन्ते, (मरणानन्तरं च) ते (निरयान् गच्छन्ति)" हे श्रीकृष्ण! अनादिकालसे सञ्चित दुष्कृतयुक्त अर्थात् "न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः। माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः। कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः। मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः। राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः" इत्यादि श्रीमुखोक्त लक्षणलक्षित मूढपुरुष आपके सन्मुख नाम अनन्याश्रित पूर्वोक्त लक्षणसम्पन्न सत्पुरुषोंके अनुयायी नहीं होते हैं वे बहिर्मुख जीते हुए भी विपत्तियोंको भोगते हैं और मरणानन्तर रौरवादि नरकोंको प्राप्त होते हैं। श्रुति "अथ य इह कपूय-चरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन्, श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा स्वकर्मणा जायेत तच तत्र" गीता "तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु। आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि। मामप्राप्यैव कौन्तेय! ततो यान्त्यधमां गतिम्" ॥ १८ ॥

अब प्रमाणोंके बलाबलका विचार करते हुए स्तुति करते हैं—

अक्षमेव सबलं प्रमाणतो
यद्यपीह कथयन्त्यपूर्वजाः।
त्वत्स्वरूपगुणवर्णने विभो!
वाक्यमेव सबलं प्रतीयते ॥ १९ ॥

हे श्रीकृष्ण! यद्यपि त्रिविधप्रमाणोंमें प्रत्यक्ष प्रमाण ही सबल है, यह आधुनिक लोग कहते हैं, तथापि हे विभो! आपके स्वरूप और गुणोंके वर्णनमें शब्द प्रमाण ही सबल प्रतीत होता है ॥ १९ ॥

"यद्यपीह प्रमाणतोऽक्षमेव सबलम् (इति) अपूर्वजाः कथयन्ति (तथापि) हे विभो ! त्वत्स्वरूपगुणवर्णने वाक्यमेव सबलं प्रतीयते" हे श्रीकृष्ण ! यहां प्रमाणोंके बलाबलविचारमें अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द इन तीनों प्रमाणोंमें प्रत्यक्ष प्रमाण ही सर्वप्रथम होनेसे प्रबल है, यद्यपि आधुनिकलोग ऐसा ही कहते हैं। तथापि हे विभो ! आपके स्वरूप और गुणोंके वर्णनमें वाक्य याने शब्दप्रमाण ही सबल प्रतीत होता है। क्योंकि भगवत्के स्वरूप और गुणोंको अचिन्त्य अनन्त तथा अलौकिक होनेसे उनके प्रतिपादनमें श्रुतिकी ही सामर्थ्य है, अतः शब्दप्रमाण ही प्रबल है और श्रुतिमूलक अनुमान तथा प्रत्यक्षादि प्रमाण भी ग्राह्य हैं, किन्तु श्रुतिविरुद्ध नहीं। स्मृति "श्रुतिसाहाय्यरहितमनुमानं न कुत्रचित्। निश्चयात्साधनेदं प्रमाणान्तरमेव च। या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः। ताः सर्वा निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः।" श्रुति "नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्"। एवं प्रत्यक्षप्रमाणका चन्द्र तथा आदित्यमण्डलादि तथा मायामस्तकादिके देखनेमें और जहां अग्निनष्ट हो गई है किन्तु धूम उठ रहा है, ऐसे स्थानमें अनुमानका भी व्यभिचार दिखाई देता है, अतः उक्त दोनों प्रमाण दुर्बल हैं और शब्द प्रमाणका कहीं भी व्यभिचार न होनेसे केवल शब्दप्रमाण ही प्रबल है ॥ १९ ॥

अथ भगवान् में ध्रुवास्मृतिमान् परमयोगियोंके औत्कर्षको दिखते हुए "उपमा सूर्यकादिवत्" इस अधिकरणकी व्याख्या करते हैं—

एकधा च बहुधा प्रदृश्यते
यत्र यत्र तव बिम्बमात्मनः।
उत्तमश्च खलु भाग्यवत्सु सः
सोऽपि युक्ततम एव सद्वरः ॥ २० ॥

हे श्रीमुकुन्द ! जिस २ चरमजन्मा अधिकारिपुरुषविशेषमें अन्तरात्मस्वरूप आपकी मूर्ति भेद और अभेद प्रकार अर्थात् भिन्नाभिन्नरूपसे प्रकाशित होती है, वह पुरुष भाग्यवानोंमें उत्तम तथा सत्पुरुषोंमें भी श्रेष्ठ एवं मोक्षभागी होनेसे वही अधिक योग्य भी है ॥ २० ॥

"यत्र यत्र आत्मनस्तव बिम्बम्, एकधा बहुधा च प्रदृश्यते (स) सद्वरः" हे श्रीमुकुन्द ! अधिकारिविशिष्ट, आपकी परमप्रसन्नताकापात्र, चरमजन्मा, ज्ञानी अतः शीघ्रही संसारसे मुक्त होनेवाले जिस पुरुषविशे-

पमें विश्वान्तरात्मस्वरूप कल्याणादिसमस्त गुणार्णव आप की मूर्त्ति चेतनाचेतनविश्वके अन्तरात्मता-अतः सर्वव्यापकता-तथा सर्वाधारता एवं स्वातन्त्र्यसत्ताकी योग्यतादि हेतुद्वारा अभेदसे और चेतनाचेतन स्वात्मीय-स्वव्याप्य-स्वाधेय-तथा स्वाधीनसत्ताकत्वादियुक्त विशेषरूप हेतुद्वारा भेदसे (अर्थात् भिन्नाभिन्न स्वरूप आपकी मूर्त्ति) स्वाभाविकदयादिसद्गुणविशेषपरवशतादि हेतुसे स्वयं (अपने आप) गंगाप्रवाहके तुल्य निरन्तर प्रकाशित होती है, यह पुरुष "भिन्नाभिन्न" ब्रह्मविषयक ध्रुवास्तुतिमान् है, अतः सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। श्रुति "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः, गीता-"तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते। प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः"। "खलु भाग्यवत्सु स उत्तमः" वह पूर्वोक्त पुरुष निश्चय परमपुरुषार्थरूप मोक्षभागी होनेसे पुरुषार्थिमात्रोंमें उत्तम है। श्रुति "न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखतां स उत्तमः पुरुषः"। सोऽपि युक्ततम एव"। किञ्च हे श्रीकृष्ण! वह पुरुष परमयोगी होनेसे अधिकयुक्तभी है। गीता "योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः" एकवचन उक्त पुरुषकी दुर्लभता सूचनार्थ है। विशेष श्रुत्यन्तसुरद्रुमके २०५ पत्रमें देखें ॥ २० ॥

अथ जीवात्ममें अहंकाराध्यासका निराकरण करते हुए उसका अहमर्थस्वरूप होना प्रतिपादन करते हैं—

द्व्यंशताऽपि न च भाति चेतने-
ऽहम्प्रतीतिविषयेऽहमर्थके ॥
त्वच्छरीरमितिहेतुवर्णना-
न्मन्य आत्मपरिशीलने कुतः ॥ २१ ॥

हे श्रीकृष्ण! अहमर्थ अतएव अहम्प्रतीतिमात्रका विषय जो चेतन (जीवात्मा) तिसमें द्व्यंशताका भान नहीं होता है। क्योंकि श्रुतिने जीवको आपका शरीर होना वर्णन किया है, अतः शरीरगतकर्तृत्वादि शरीरी प्रयुक्त हैं इससे चेतन के कर्तृत्वादिमें कोई असमञ्जसता रूप दोष नहीं है। और अहमर्थके तत्त्वका यथार्थ विचार करनेमें तो किसी शंकाका अवकाश ही नहीं है, यह मेरा सिद्धान्त है ॥२१॥

"अहमर्थके द्व्यंशता न भाति" अहमर्थ एवाहमर्थक इति स्वार्थ तद्धितः। द्वयोरंशौ द्व्यंशौ, तयोर्भावो द्व्यंशता। हे श्रीकृष्ण! अहमर्थस्वरूप

प्रत्यगात्मामें द्रव्यशता (अर्थात् चेतन और अहङ्कारकी परस्पर अध्यासरूपता) का भी भान नहीं होता है । "अहम्प्रतीतिविषये" क्योंकि वह प्रत्यगात्मा "अहं जानामि" इत्यादि प्रतीतिमात्रका विषय है। "चेतने" और हे श्रीकृष्ण ! वह प्रत्यगात्मा (जीवात्मा) चेतनसे अभिन्न अर्थात् चेतन है, अतः उसमें अहम्प्रतीतिका व्यभिचार नहीं है । क्योंकि "एतावन्तं कालं सुखमहमस्वाप्सम्, एतावन्तं कालं मूर्च्छित एवासम्, न किञ्चिदवेदिषम्" इतने कालपर्य्यन्त मैं सुखसे सोया, इतने कालपर्य्यन्त मैं मूर्छित रहा, अतः मैंने कुछ भी नहीं जाना, यह स्मरण और "योऽहमस्वाप्सं स एवाहं जागर्मि" जो मैं सोया था वही मैं जागता हूँ, यह प्रत्यभिज्ञान भी "अहमर्थं सर्वावस्थासु अनुगत है" इसमें प्रमाण है । किञ्च यदि सुषुप्तिमें अहमर्थाभाव मान लें तो "अहं विदुःखः स्याम्" मैं विदुःख होऊँ इस इच्छाकी प्रवृत्ति भी नहीं बनेगी ! तथा "जो मैं सोया था वही मैं जागता हूं" इस प्रत्यभिज्ञानका बाध और "योऽहं पूर्वेद्युरकार्षं सोऽहमद्य करोमि" जिस मैंने पूर्वदिन किया था वह मैं अब भी करता हूं, इस प्रत्यभिज्ञाकी अनुपपत्ति होगी । अतः सुषुप्त्यादि अवस्थामें भी सुख और अज्ञानका आश्रय (सुख और अज्ञानका अनुभवकर्त्ता) अहमर्थ अनुगत है । क्योंकि अनिज्ञा तथा प्रत्यभिज्ञा और अनुभव तथा स्मरण इन्होंका सामानाधिकरण्य होना ही नियम है । अर्थात् जिसको अभिज्ञा होती है उसीको प्रत्यभिज्ञा और जिसको अनुभव होता है उसको ही स्मरण भी होता है । अन्यके अभिज्ञात तथा अनुभूतका अन्यको प्रत्यभिज्ञा तथा स्मरण कहीं भी देखा एवं सुना नहीं जाता है । यदि उक्त जगत्प्रसिद्ध नियमको न मानें तो "यः पूर्वं मदन्यः सुप्तः सोऽधुनाहं जातः" पूर्वमें जो मेरेसे अन्य सोयाथा इस समय वही मैं हुआ, ऐसी प्रतीति होना चाहिये, सो नहीं होती है । अतः पूर्वोक्त कारणोंसे अहमर्थ सर्वदा अनुगत होनेसे आत्मस्वरूप है, और उसमें चेतन तथा अहङ्कारकी अध्यासरूप द्रव्यशता मानना भी शास्त्र तथा युक्ति विरुद्ध है । एवं अहमर्थ सर्वावस्थामें अनुगत है अतः आत्मस्वरूपसे अभिन्न भी है और "अहं जानामि" इत्यादि प्रतीतियां भी अहमर्थविषयक हैं, यह सिद्ध हुआ । श्रुति "ब्रह्मवेदमग्र आसीत्, स चात्मानं वेदाहं ब्रह्मास्मि बहु स्यां प्रजायेय, नामरूपे व्याकरवाणि, त्रिवृतं त्रिवृतं करवाणि" इन श्रुतियोंने नित्यमुक्त श्रीपुरुषोत्तमको भी ज्ञानभिन्न अहमर्थ-

स्वरूप होना कहा है। तथा "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" इस श्रुत्युक्त परमात्माकी समताको प्राप्त मुक्तोंका भी अहमर्थाभिन्न स्वरूपहोना वेदमें प्रतिपादन किया है। श्रुति "अभयं वै जनक ! प्राप्तोऽसि यदात्मानमेव वेदाहं ब्रह्मास्मि। अहं मनुरभवं सूर्यश्च"। इन पूर्वोक्त श्रुतियोंसे सिद्ध है कि सुषुप्ति तो क्या किन्तु मोक्षदशामें भी अहमर्थ अनुगत है। शङ्का-अहमर्थको द्रव्यंशताका योग न माननेसे केवल चेतनको कर्तृत्वादि होना भी असम्भव है ? उत्तर "त्वच्छरीरमिति हेतुवर्णनात्"। "यस्यात्मा शरीरम्" यह श्रुति जीवको भगवत्का शरीर होना वर्णन करती है, और शरीरगतकर्तृत्वादि आत्मा नाम स्वशरीरीके अधीन है क्योंकि शरीर शरीरीके अधीनसत्तायुक्त है। अतः स्वशरीरीद्वारा प्रेरित कर्तृत्वादिका आश्रय अहमर्थ-स्वरूप जीव है। इस सिद्धान्तमें कोई भी विरोध नहीं है।

"मन्ये आत्मपरिशीलने कृतः" हे श्रीकृष्ण ! पूर्वोक्त अहमर्थके तत्त्वयाथात्म्य (यथोचित-यथार्थ) विचारमें पूर्वोक्त रीतिसे मननकरनेपर पूर्वोक्त शंका ही कहां हो सकती है, (अर्थात् नहीं हो सकती है) क्योंकि अहमर्थक जीव भगवान्का आत्मीय है, अतः भगवान्के अधीन ही उसका स्वरूप, स्थिति एवं प्रवृत्ति है और जीव भगवान्का आधेय भी है। इससे स्वशरीरीसे प्रयुक्त कर्तृत्वादि सबका सामञ्जस्य है ॥ २१ ॥

अथ दृष्टिसृष्टिवादका निराकरण करते हुए कहते हैं—

दृष्टिसृष्टि-रपि नैव सम्मता
दर्शनात्तव फलं यतः स्थिरम् ॥
सार्थको भवति यत्र शब्दकः
सर्व एव परदेवताऽऽत्मनि ॥ २२ ॥

हे श्रीकृष्ण ! वेदमें आपके साक्षात् दर्शनसे ही मोक्ष होना माना है, इससे दृष्टिसृष्टिवाद भी वेद और सत्पुरुषोंको सम्मत नहीं है। एवं दृष्टिसृष्टिवादके न माननेसे ही परदेवतात्मस्वरूप आपमें समन्वयद्वारा उभयकाण्डरूप समस्त वेद सार्थक होता है, अन्यथा नहीं ॥ २२ ॥

"दृष्टिसृष्टिरपि नैव सम्मता" "दृष्टौ सृष्टिर्दृष्टिरेव सृष्टिरिति वा दृष्टिसृष्टिः" हे

श्रीकृष्ण ! जिनके मतमें दृष्टिके अभावमें सृष्टि नहीं है। अर्थात् देवदत्तके सोनेपर उसका देहादिक उसके प्रति नहीं है और जागते हुए यज्ञदत्तादिको भ्रान्तिसे उसका भान होता है। और "सोऽयं देवदत्तः" इत्यादि प्रत्यभिज्ञा "सोऽयं दीपः" इत्यादिके तुल्य भ्रान्ति ही है। उनका यह दृष्टिसृष्टिवाद श्रुति तथा सत्पुरुषोंको सम्मत नहीं है। अर्थात् दृक्से अन्य सब दृश्यको दृष्टिसृष्टि माननेवालोंके मतमें "ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ॥ ध्रुवाः समुद्रा नद्यश्च ध्रुवं विश्वमिदं जगत्" इत्यादि श्रुतियां और "ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्" इत्यादि स्मृतियां तथा "सत्याच्चावरस्य, असदपदेशादिति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात्" इन सूत्रोंका बाध होगा, अतः यह पक्ष महत्पापीयान् होनेसे आस्तिकोंको हेय है। "दर्शनात्तव फलं यतः स्थिरम्" और हे श्रीकृष्ण ! अचिन्त्य अनन्त स्वाभाविक कल्याणगुणाश्रय, अस्पृष्टदोषमाहात्म्यस्वभाव आप के साक्षात्कार अनुभव से ही मोक्षलक्षण फल शास्त्रमें सुना है। अर्थात् साक्षात् भगवान्के दर्शनसे ही मोक्ष होता है, अन्यथा नहीं, यह वेदका सिद्धान्त है। इससे दृष्टिसृष्टिवाद वेदसम्मत नहीं है। भावार्थ यह है कि दृश्य प्रपञ्चमात्रको मिथ्या माननेवालोंका मत (दृष्टिसृष्टि) श्रुति विरुद्ध है। क्योंकि "यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ॥ तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ तुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं तन्महिमानमिति वीतशोकः" इत्यादि श्रुतियोंसे परमात्माका भी दृश्य होना सिद्ध है। अतः उक्त कपोलकल्पितदृष्टिसृष्टिमतमें ब्रह्म भी दृश्य होनेसे मिथ्याहोगा। और पूर्वोक्त (ब्रह्मको दृश्य होना प्रतिपादन करनेवाली) श्रुतियोंका भी बाध होगा। अतः दृष्टिसृष्टिवाद शास्त्र तथा युक्तिविरुद्ध होनेसे हेय है। और पूर्वोक्तमतमें शास्त्रकेसार्थक्यकी अनुपपत्ति दिखलाते हुए कहते हैं। "सार्थको भवति यत्र शब्दकः सर्व एव" हे श्रीकृष्ण ! उक्त दृष्टिसृष्टिवादके निराकरणमें ही "ज्योतिष्टोमेन यजेत स्वर्गकामः" इत्यादि कर्मकाण्ड, तथा "आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः, मुमुक्षुर्ब्रह्मोपासीत" इत्यादि ज्ञानकांडरूप शब्दक (वेद) सार्थक (सफल) होता है। और दृष्टिसृष्टिवादके स्वीकार करनेमें उभयकाण्डात्मक समस्तवेद निरर्थक होगा। इससे भी दृष्टिसृष्टिवाद हेय है। "परदेवतात्मनि" हे श्रीकृष्ण ! समस्तोंके अन्तरात्मा अतः परदेवतारूप आपमें ही समन्वय होनेसे सर्ववेद सार्थक हैं। तात्पर्य यह है कि "परा देवता एवात्मा परदेवतात्मेति" पूर्वकाण्डवृत्ति विधिवाक्योंकी उन २ इन्द्रादिदेव-

तार्थोंके अन्तरात्मतासे वर्त्तमान परदेवतारूप आपमें ही समन्वय होनेसे सार्थकता है। एवं उत्तरकाण्डवृत्ति विधिवाक्यों की भी आपकी प्राप्तिका हेतुभूत निदिध्यासन विधानद्वारा विश्वात्मा आपमें ही साक्षात्समन्वय होनेसे सार्थकता है। पूर्वोक्त प्रकारसे कर्म और ज्ञानकाण्डरूप समस्त वेदका समन्वय विश्वात्मा श्रीकृष्णमें परम्परा तथा साक्षात्सम्बन्धद्वारा होता है। श्रुति "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" गीता "वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः"। किञ्च दृष्टिसृष्टिवादमें दृश्यरूप वैदिक कर्मादि सबमिथ्या होंगे-इससे वेदका कर्मकांडभाग और दृश्य होनेसे ब्रह्म भी मिथ्या होगा-इससे ज्ञानकांड, ये दोनों ही काण्डोंको निरर्थक होनेसे समस्त वेद ही निरर्थक होगा। अतः वैदिकोंको उक्त दृष्टिसृष्टिवाद सर्वथा हेय है ॥ २२ ॥

अब ब्रह्मही अज्ञानका आश्रय तथा विषय है, इस मतका निराकरण करते हुए स्तुति करते हैं—

नाश्रयो न विषयो भवान् यतो
ऽज्ञानतोऽपि करुणानिधे ! तव ॥
सत्स्वरूपमत आमनन्ति हि
विग्रहं परममङ्गलं परम् ॥ २३ ॥

हे करुणानिधे ! श्रीकृष्ण ! आप अज्ञानके आश्रय तथा विषय भी नहीं है, क्योंकि श्रुतियां आपको सत्स्वरूप कहती हैं, वैसे ही आपके विग्रहको भी स्वरूपके सदृश प्रकाशस्वरूप होनेसे परममङ्गलरूप कहती हैं ॥ २३ ॥

"हे *करुणानिधे ! भवान् अज्ञानत आश्रयो विषयश्च न भवति" हे श्रीकृष्ण!

---

* करुणानिधि नाम हे श्रीकृष्ण आप परदुःखका सहन न करने के अव्यभिचरिताश्रय हैं, अतः जगत्के दुःखकी निवृत्तिको प्रार्थना करता है, अर्थात् संसारी बद्ध जीवगण अनादिकर्मजन्य असंख्येय दुःखोंके आश्रय हैं, और हे श्रीकृष्ण आप स्वाभाविक करुणादिगुणोंके आश्रय हैं अतः उन बद्ध जीवोंके दुःखोंका सहन करना आपको अनुचित है। यद्वा अन्य (ब्रह्मको अज्ञानका आश्रय माननेवाले) आप की मायासे मोहितचित्त हैं, अत एव स्वाज्ञानका आपमें आरोप करने वाले उन दुःखीपुरुषोंको स्वविषयक ज्ञानदानद्वारा उनका अज्ञान दूरकरके वे भी आपके अनुग्राह्य हैं। यह करुणानिधिका भावार्थ है।

आप अज्ञानके आश्रय तथा विषय भी नहीं हैं। जैसे सूर्य्यको अन्धकारका आश्रय तथा विषय होना अत्यन्त असम्भव है। वैसे ही सार्वज्ञ्य और अज्ञानका परस्पर अत्यन्त विरोध होनेसे ब्रह्मका अज्ञान का आश्रय तथा विषय मानना भी असङ्गत है। "यतो (भवान् अज्ञानस्याश्रयो विषयश्च न, तस्मात् श्रुतयः) तव सत्स्वरूपमामनन्ति" हे श्रीकृष्ण ! आप अज्ञानके आश्रय तथा विषय नहीं हैं, इसीसे श्रुतियां (अचिन्त्य-अनन्त-ज्ञानशक्तिबलादि स्वाभाविकसद्गुणोंके आश्रय) आप के स्वरूपको सत् कहती हैं। श्रुति "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, यः सर्वज्ञः सर्ववित्, न आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः। सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः" । शङ्का-ब्रह्ममें अज्ञानका अङ्गीकार न करें तो उसका विग्रहादियोग कैसे बनेगा ? उत्तर "विग्रहं परममङ्गलम्, (इति श्रुतय आमनन्ति" हे श्रीकृष्ण ! जैसे श्रुतियां आपके स्वरूपको सत्यत्वादि गुणोंका आश्रय होना कहती हैं, वैसेही आपके विग्रहको भी परममङ्गलरूप होना कहती हैं। अतः भगवान्के विग्रहको मायिक मानना वेदविरुद्ध है। क्योंकि सम्पूर्ण अमंगलरूप अज्ञानका कार्य मङ्गल नहीं हो सकता है। इससे उक्त शंका ठीक नहीं है। "परम्" हे श्रीकृष्ण ! आपका विग्रह स्वरूपकी तुल्य प्रकाशस्वरूप होनेसे चराचर वस्तुमात्रोंसे विलक्षण है। श्रुतियां "हिरण्यकेशः हिरण्यश्मश्रुः आप्रणखात् सुवर्णः, यदात्मको भगवांस्तदात्मिका व्यक्तिः, किमात्मको भगवान् ? ज्ञानात्मक एवचात्मकः, अस्नाविरं, दुर्दर्शमतिगम्भीरमजं श्यामं त्रिशारदम् । पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्, जरामरणविनिर्मुक्ताः सर्वधर्माः स्वभावतः" । तथा विष्णुपुराण "समस्ताः शक्तयश्चैता नृप ! यत्र प्रतिष्ठिताः । तद्विग्रहस्वरूपत्वं रूपमन्यद्वदेमहत्" । वराहपुराण "सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः । हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित् ॥ परमानन्दसन्दोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वशः । सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः"। तथा ईश्वरका विग्रह नित्य है ईश्वर करणहोनेसे, सार्वज्ञादिवत् । यह अनुमान भी ईश्वरविग्रहके नित्य होनेमें प्रमाण है। उक्त कथनसे आविर्भाव-तथा तिरोभावयुक्त होनेसे ईश्वरविग्रह अनित्य है, यह मन्दोंकी कल्पना वेद तथा युक्तिविरुद्ध होनेसे आस्तिकोंको अनादरणीय हैं ॥ २३ ॥

अब ब्रह्मके साक्षात्कारमें श्रवणको अन्तरङ्गसाधन और ध्यानको उसका अङ्ग माननेवालोंका मत निरासकरते हुए स्तुति करते हैं—

ध्यानमङ्गमिति यन्मतान्तरं

तन्न युक्तमत एव माधव ! ॥
यद्यपि श्रवणतोऽपवर्गदोऽङ्गं
तथाऽपि सुवचं शुभं यतः ॥ २४ ॥

हे श्रीकृष्ण ! ध्यानको अङ्ग और श्रवणको अङ्गी माननेवालोंका मत युक्त नहीं है। हे मुकुन्द ! यद्यपि आप श्रवणसे भी परम्पराद्वारा मोक्ष देते हैं, तथापि श्रवणको दर्शनका साक्षात्साधन न होनेसे ध्यानका अङ्ग मानना यह सिद्धान्त वैदिक है, अतः यथार्थ है ॥ २४ ॥

"हे माधव ! ध्यानमङ्गमिति यन्मतान्तरं तदयुक्तं न (भवति)"। "आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" यहां आत्मदर्शनमें साक्षात्कारका अन्तरंग हेतु होनेसे श्रवण अङ्गी है, और मनन तथा निदिध्यासन परम्परा साधनद्वारा साक्षात्कार (दर्शन) के हेतु हैं अतः उस (श्रवण) के अंग है, यह जिनका मत है, यह वेद तथा युक्तिविरुद्ध होनेसे ठीक नहीं है। यदि वेदान्तके श्रवणसे ही साक्षात्कार हो तो उक्त श्रुतिने मननादिका विधान ही किसलिये किया ? क्योंकि चक्षु-मात्रग्राह्य तथा दर्शनमें तारतम्य न होनेसे दर्शनके अनन्तर पुनः उसके लिये अन्यसाधनकी अपेक्षा उन्मत्तके बिना अन्य किसीको भी नहीं होती है। और अङ्ग फलोत्पत्तिके साधनकी सहायमात्रका उपयोगी होता है, अतः दर्शनरूप फलोत्पत्तिके अनन्तर उस (मननिदिध्यास-नरूप अंग) का प्रयोजन ही नहीं रहता है। इससे वे व्यर्थ हो जायँगे। शङ्का-असम्भवादिकी निवृत्तिके लिये मनन और निदिध्या-सनका भी प्रयोजन है ?। उत्तर-जैसे सूर्यके दर्शन होनेपर किसीको भी उसमें असम्भावना नहीं रहती है, वैसेही यहाँ भी साक्षात्कारके अनन्तर असम्भावना नहीं रह सकती है। अतः श्रवणको अङ्गी मानना युक्तिविरुद्ध है। और भी हेतु कहते हैं। "अत एव" श्रवण और साक्षात्कारकी व्याप्तिके अभावसे अर्थात् जहां श्रवण है वहाँ साक्षात्कारका अभाव है, यह विरुद्धव्याप्ति दृष्टिगोचर होती है, इस हेतुसे भी श्रवण साक्षात्कारका हेतु नहीं है। तथा "श्रवणं न ब्रह्मसाक्षा-त्कारहेतुः। "शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्यु"रित्यादिश्रुतिनिरादरविषयत्वात्। यन्नैवं तन्नैवम्। "उतस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः" इत्यादि करतल-वेण साक्षात्फलसाधनत्वेन श्रूयमाणनिदिध्यासनवत्। "श्रवणं न निदि-

ध्यासनस्याङ्गि । साक्षात्फलसाधनत्वेनाश्रूयमाणत्वात् । व्रीहीन् प्रोक्षति इत्यादौ श्रुतप्रोक्षणादिवत्''इत्यादि अनुमान भी श्रवणको साक्षात्कारका हेतु तथा अङ्गी-न होनेमें, और "निदिध्यासनमङ्गि" साक्षाद्ब्रह्मप्रत्यक्षफलकरणत्वेन श्रूयमाणत्वात्। श्रवणमननयोस्तदङ्गत्वम्, ब्रह्मसाक्षात्कारभूतफलमन्तरेण कर्तव्यतया विहितत्वात्" यह अनुमान निदिध्यासनको अङ्गी होनेमें प्रमाण है, इससे भी श्रवण अङ्गी नहीं है। तथा "द्रष्टव्यः श्रोतव्यः" इस श्रुतिमें दर्शनसे अव्यवधानपाठ-रूप सन्निधान होनेसे भी साक्षात्कारमें श्रवण ही अङ्गी है, क्योंकि श्रुतिने दर्शनका उद्देश्यकरके ही श्रवणका विधान किया है। अन्यथा तुम्हारे मतमें उक्त श्रुतिका व्याकोप होगा ? । उत्तर-अव्यवधानपाठ-रूप सन्निधान हेतु भी अंगी होनेमें प्रयोजक नहीं है। किन्तु तदुत्पत्ति-जननानुकूल सामर्थ्य ही प्रयोजक है। क्योंकि सन्निधि ही प्रयोजक हो तो नपुंसकके सान्निध्यसे भी स्त्रियोंको सन्तानोंकी उत्पत्ति होनी चाहिये, सो कहीं भी देखी सुनी, नहीं जाती है। इससे भी सन्निधि-पाठरूप तुम्हारा हेतु श्रवणके अङ्गी होनेमें अप्रयोजक है। तथा "श्रुत्वा मत्वा तथा ध्यात्वा तदज्ञानविपर्ययौ। संशयं च परामृश्य लभते ब्रह्मदर्शनम्" उक्त श्रुतिव्याख्यारूप इस स्मृतिने भी श्रवण और मननको अज्ञान तथा संशयादिकी निवृत्तिकरके उपक्षीण होना और ध्यानको अंगी होना माना है। श्रुति "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन, यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" इत्यादि श्रुतियोंने भी श्रवणसे ब्रह्मके साक्षात्कारका अभाव माना है। उक्त कारणोंसे श्रवणको अङ्गी मानना सर्वथा वेद तथा युक्तिविरुद्ध है यह सिद्ध हो चुका। "यद्यपि श्रवणतो-ऽपवर्गदो (भवान्) तथापि (श्रवणम्) अङ्गम् (इत्येव) नुवर्च यतः शुभम्" हे श्रीकृष्ण! यद्यपि श्रवणसे भी आप निदिध्यासनसाक्षात्कारद्वारा परम्परासे मोक्षदेते हैं। तथापि श्रवण परोक्षज्ञानका हेतु होनेसे बहिरङ्ग है, अतः निदिध्यासन (ध्यान) का अङ्ग है, और ध्यान उसका अङ्गी है। इससे श्रवणको ध्यानका अङ्ग मानना अच्छा है। क्योंकि दिक्सिद्धान्त होनेसे शुभ नाम यथार्थ है। भाव यह है कि सर्वथा श्रवणके निषेधमें यहाँ हमारा तात्पर्य नहीं है, किन्तु श्रवणको अन्त-रङ्गताके निषेधमें। श्रुति ही इस बातको निर्णय करती है। यथा श्रुति "आत्मा वाऽरे ! द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" यहां वाक्यार्थरूप ज्ञान श्रवणशब्दसे कहकर और मध्यमें मननको पुष्टिके लिये तथा

अन्तमें अन्तरङ्ग निदिध्यासनको कहकर समाप्ति कही। इस श्रुतिके उक्त तात्पर्यको यदि न मानें तो रोगी पुरुषको औषधके सेवन किये विना भी औषधके श्रवणमात्रसे ही रोगकी निवृत्ति और सुखकी प्राप्ति, तथा जन्मदरिद्र भोजनाच्छादनहीन पुरुषको कामधेनु कल्पतरु एवं चिन्तामण्यादिके नामोंके श्रवणमात्रसे दारिद्र्यकी निवृत्ति और निधिकी प्राप्ति होनी चाहिये। सो देखा और सुना भी नहीं है। अतः श्रवणसे बन्धनकी निवृत्ति मानना भी युक्तिविरुद्ध होने से ठीक नहीं है ॥ २४ ॥

अथ सर्वशास्त्रार्थका उपसंहार तथा श्रीभगवान्के चरणारविन्दोंसे विमुखपुरुषोंकी निन्दाद्वारा व्यतिरेकमुखसे भगवान्की निष्ठाका विधान करतेहुए स्तुति करते हैं—

प्राप्य जन्म यदि मानुषं नरः
सेवते न तव पादपङ्कजम् ॥
धिक् च जन्म कुलमादिदेव ! त-
द्यौवनादि सकलं न शोभते ॥ २५ ॥

हे आदिदेव ! जो नर मनुष्य जन्म प्राप्तकर संसारके पोतरूप आपके चरणारविन्दोंमें आत्मसमर्पण नहीं करता है, उसके त्रिविध जन्म तथा ब्राह्मणादि उत्तमकुलको भी धिक् है। एवं उसकी यौवनादि सकल अवस्थायें भी शवालङ्कारके तुल्य दर्शनके अयोग्य होनेस शोभा नहीं देती हैं ॥ २५ ॥

"हे आदिदेव ! (ये) नरो मानुषं जन्म प्राप्य, तव पादपङ्कजं न सेवते, तस्य जन्मादि धिक्" हे ब्रह्मरुद्रादिदेवोंके आदिकारणरूप देव ! जो नर श्रुतिस्मृतिश्लाघित यद्दुर्लभद्वारा भगवत्प्रसादसे मनुष्यजन्मको प्राप्तहोकर (जगत्के जन्मादिभिन्ननिमित्तोपादानकारण, मुमुक्षुओंके ध्यानके विषय, अचिन्त्यसद्गुणार्णव, ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिदेवसमूहोंके किरीटों से वन्दितपादपीठ) आप श्रीमुकुन्दभगवान्के (स्वजनैकजीवन- सर्वतीर्थास्पद, भक्ताभिलाषके परिपूरणार्थनिबद्धकक्ष और कमलाभिलालित तथा संसारसमुद्रके पोतरूप) चरणारविन्दोंकी सेवा अर्थात् आत्माऽऽत्मीयार्पणसम्प्रदानताद्वारा आपके चरणोंको स्वीकार नहीं करता है। उसके (१) शौक-सावित्र्य और दैक्ष्य-ये तीनों जन्म धिक् नाम अत्य-

(१) ऋष्यादिशुक्रोद्भवको शौक्र-और उपनयनसंस्कारसे उत्पन्नको सावित्र्य-तथा गुरुदीक्षारूप संस्कारसे उत्पन्न जन्मको दैक्ष्य कहते हैं।

न्त निन्दनीय हैं। क्योंकि भगवच्चरणारविन्दविमुख होनेसे संसारके हेतु हैं। "(तथा) कुलमपि धिक्" उसी प्रकार उस भगवद्विमुखजनोंका ऋष्यादिगोत्रपरम्परागत अत एव सर्वोत्तम ब्राह्मणादि कुल भी धिकारास्पद है। "(न चैतन्मात्रमेव किन्तु) यौवनादि सकलं न शोभते" इतनाही नहीं किन्तु उस भगवच्चरणारविन्दोंसे बहिर्मुखोंके तेजो-बल-वीर्यादि तथा यौवनादि समस्त अवस्थायें भी शव (मृतक) के अलङ्कारोंके सदृश दर्शनके अयोग्य हैं। भाव यह है कि इस अपारसंसारमें मनुष्य जन्म ही सर्वश्रेष्ठ है, और शास्त्रने भी इसी मनुष्यजन्मकी भूरि २ प्रशंसा की है। क्योंकि इस मनुष्यजन्ममें ही शास्त्रोपदिष्टसाधनसम्पन्न पुरुष भगवत्कृपासे सर्वपुरुषार्थोंमें श्रेष्ठ मुक्तिको प्राप्त होकर असीम-तथा अवर्णनीय आनन्दका लाभ कर सकता है, अन्य जन्ममें नहीं। और बारंबार मनुष्यदेहका प्राप्त होना भी दुर्लभ है। अतः जो पुरुष मनुष्यदेहको प्राप्तहोकर भी सर्वाधिदेव-कारुण्यादिसद्गुणगणाकर श्रीकृष्ण परमात्माके कमलाभिलालित-ब्रह्मादिवन्दित चरणारविन्दोंको सर्वपुरुषार्थका साधन तथा साध्यरूप निश्चयकर उन (चरणारविन्दों) में आत्मसमर्पण नहीं करता है, उसका जन्म उत्तमकुल एवं यौवनादि समस्त अवस्थायें तथा चातुर्यादि समस्तगुण सुवर्णालंकृत मृतक देहके सदृश अत्यन्त निन्दनीय हैं। अतः श्रुति निषिद्ध पापाचार एवं उसके सदृश पुण्यरूप काम्यकर्मोंको भी "सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते" इत्यादि श्रुतिमें पापराशिमें गणना की है, अतः उस (काम्य) को भी त्यागकर अपने कल्याणके लिये यत्नकरनेवाले मुमुक्षुपुरुषोंको भगवत्पदारविन्द ही सर्वदा सेवनीय हैं। भगवत्पदारविन्दोंकी सेवारूप सुखसाध्य और अभय नौकाको छोड़कर अन्य कोई उपाय इस संसाररूप दुस्तर समुद्रके पार उतरनेका नहीं है। यदि सर्वोत्तम इस मनुष्य जन्ममें भी भगवत्पदारविन्दकी सेवा द्वारा भगवदनुग्रहका सम्पादन न कर सके तो फिर क्या होसकता है। नानाविध यातनाओंको भोगना और चौरासीलक्ष योनियोंके चक्रमें भ्रमण करते रहना। अतः मनुष्यमात्रोंको अवश्य ही भगवत्कृपा सम्पादन करना चाहिये। शास्त्रमें भी कहा है कि "या वै साधनसम्पत्तिः पुरुषार्थचतुष्टये ॥ तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः ॥ चारों पुरुषार्थोंके लिये जिन साधनसम्पत्तिकी आवश्यकता है, उन (साधनसम्पत्ति) के विना भी

श्रीकृष्णके आश्रित (भक्त) पुरुष उन चारों पुरुषार्थोंको लाभ कर सकता है। उक्त कथनसे सिद्ध है कि श्रीकृष्णके भक्तोंको अनायास ही सर्वसिद्धि प्राप्त होती है। श्रुति "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः, तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः। मत्प्रसादादवाप्नोषि शाश्वतं पदमव्ययम्, अविदुषामोदरं वस्तु भक्तिनघोऽवैष्णवेश्वरः। न स संसारगर्तेऽस्मिन् मज्जते दानवेश्वर!। कल्यमुत्थाय ये भक्ताः स्मरन्ति मधुसूदनम्। स्तुवन्ति अपि शृण्वन्तो दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥ अनन्यमनसो भक्ता ये नमस्यन्ति केशवम्॥ शुचयस्ते महात्मानस्तीर्थीभूता भवन्ति ते" इत्यादि **अथ उक्तशास्त्रविषेकजन्यविरागसम्पन्न, विश्वासार्जवादिभूषण, हरिगुरुभक्तिपरायण, भगवद्भावापत्तिकाम, जिज्ञासु पुरुष इस ग्रन्थका अधिकारी है।** श्रुति "परीक्ष्य लोकान् कर्मजितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्। तस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः" ॥ **अशेषदोषोंसे रहित और अचिन्त्यानन्तस्वाभाविकसद्गुणगणार्णव ब्रह्मरुद्रादिगुरु-जगज्जन्मादिहेतु-भगवान्-श्रीमुकुन्द इस ग्रन्थके विषय हैं।** श्रुति "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामः, वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्। शास्त्रयोनित्वात्" ॥ **भगवद्भावापत्तिलक्षणमोक्ष इसका प्रयोजन है।** श्रुति "परमं साम्यमुपैति, तन्महिमानमिति वीतशोको धातुः प्रसादात्, पूता मद्भावमागताः। मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते"। **प्रतिपाद्य-और प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है।** "तत्तु समन्वयात्। नमामः सर्ववचसां प्रतिष्ठां यत्र शाश्वती" **इत्यादि शास्त्रसे इस ग्रन्थके अनुबन्ध चतुष्टय भी जानना ॥ २५ ॥**

श्रीनिवासप्रसादार्थं तुष्ट्यर्थञ्च विवेकिनाम्।
मन्दानामुपकारार्थं सफलः स्यादयं श्रमः॥ १॥
आद्याचार्यपदाम्भोजस्मरणोद्बुद्धबुद्धिना॥
तत्प्रसादैककामेन कृतोऽयं संग्रहो मया॥ २॥

इति श्रीश्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रचरणसरोजमकरन्दमधुकर पं० श्रीकिशोरदासप्रणीता सविशेषनिर्विशेषश्रीकृष्णस्तवस्य तत्त्वसुधाख्यव्याख्या समाप्ता। हरिः ओं तत्सत्।